वेदामृतम्

वैदिक मनोविज्ञान

डा० कपिलदेव द्विवेदी

ओ३म्

वेदामृतम्

भाग- ८

वैदिक मनोविज्ञान

(PSYCHOLOGY IN THE VEDAS)

लेखक

डा० कपिलदेव द्विवेदी

कुलपति, गुरुकुल महाविद्यालय
ज्वालापुर (हरिद्वार)

एवं

डा० भारतेन्दु द्विवेदी

अध्यक्ष, विश्वभारती अनुसन्धान परिषद्
ज्ञानपुर (वाराणसी)
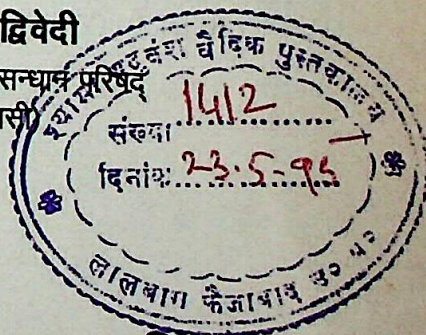
विश्वभारती अनुसन्धान परिषद्

ज्ञानपुर (वाराणसी)

VEDAMRITAM- Vol. VIII
(VADIKA MANOVIJÑĀNA)
PSYCHOLOGY IN THE VEDAS

By : Dr. K. D. DVIVEDI & Dr. B. DVIVEDI

द्वितीय संस्करण
सन् १९९० ई०

ISBN 81-85246-17-3 (Paper Back)
81-85246-18-1 (Bound)

प्रकाशक
VISHVABHARATI RESEARCH INSTITUTE
GYANPUR-221304 (VARANASI) U.P., INDIA

प्राक्कथन

पुस्तक-लेखन का उद्देश्य—वेद आर्य जाति का सर्वस्व है, मानव-मात्र का प्रकाश-स्तम्भ और शक्ति-स्रोत है। वेदों का प्रकाश संसार भर में फैलकर मानव-जीवन में व्याप्त निराशा, अज्ञान, अन्धकार, दुर्विचार, अनाचार, दुर्गुण, आधि-व्याधि और दिशा-भ्रम को दूर करे, जिससे ज्ञान, आचार, संयम और सुसंस्कृति का आलोक सर्वत्र व्याप्त हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए चारों वेदों से विभिन्न विषयों पर मन्त्रों का संकलन किया गया है। वेदों के मन्त्र सरल संस्कृत के तुल्य सुबोध और हृदयंगम हो सकें, इसलिए प्रत्येक मन्त्र का अन्वय, शब्दार्थ, अनुशीलन, टिप्पणी आदि देकर उसे सुगम बनाया गया है। साधारण हिन्दी जानने वाला व्यक्ति भी इस प्रकार वेदों के अमृत का रसास्वाद कर सकता है।

योजना का स्वरूप—इस वेदामृतम्-ग्रन्थमाला की योजना है कि वेदों में वर्णित सभी ज्ञान और विज्ञान के विषय पृथक्-पृथक् ग्रन्थों में विषयानुसार वर्णित हों। इसलिए विषयानुसार वेदामृतम् ४० खण्डों में प्रकाशित करने की योजना है। इसके प्रथम सात भाग 'सुखी जीवन', 'सुखी गृहस्थ', 'सुखी परिवार', 'सुखी समाज', 'आचार-शिक्षा,' 'नीति-शिक्षा' और 'वेदों में नारी' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। अष्टम भाग पाठकों के हाथों में समर्पित है।

व्याख्या की पद्धति—प्रत्येक मन्त्र को अत्यन्त सरल ढंग से समझाने के लिए सर्वप्रथम मन्त्र का अन्वय दिया गया है। अन्वय के अनुसार ही प्रत्येक शब्द का हिन्दी में अर्थ दिया गया है। तदनुसार मंत्र का हिन्दी में अर्थ है और उसके पश्चात् मंत्र का अंग्रेजी अनुवाद भी अंग्रेजी जानने वालों की सुविधा के लिए दिया गया है। अनुशीलन में मन्त्र का भाव व्याख्या के ढंग से समझाया गया है। मंत्र में व्याकरण आदि की दृष्टि से व्याख्या के योग्य शब्दों का प्रकृति-प्रत्यय आदि टिप्पणी में दिया गया है। इससे पाठक मंत्रों का अर्थ आदि सूक्ष्मता के साथ समझ सकेंगे।

मंत्र-संख्या, क्रम और मन्त्रार्थ-विधि—प्रत्येक भाग में उस विषय से सम्बद्ध १०० मंत्र दिए गए हैं। चारों वेदों में उस विषय पर जो सरल और अत्यन्त उपयोगी मंत्र प्राप्त हुए हैं, उन्हें चुना गया है। चारों वेदों से सरलतम मंत्रों का ही इसमें संकलन है। मंत्रों को विषय और भाव की दृष्टि से क्रमबद्ध किया गया है। मन्त्रार्थ के विषय में महर्षि पतंजलि के वैज्ञानिक मन्तव्य को अपनाया गया है कि **'यच्छब्द आह तदस्माकं प्रमाणम्'** जो शब्द कहता है, वह हमारे लिए प्रमाण है। मन्त्र के पाठ से जो अर्थ स्वयं निकलता है, उस अर्थ को ही लिया गया है। एक परमात्मा के ही अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि नाम हैं, अतः यथास्थान इन शब्दों का अर्थ परमात्मा दिया गया है।

वेदों में विविध विज्ञानों से संबद्ध पर्याप्त सामग्री है। इनमें मनोविज्ञान से संबद्ध सैकड़ों मन्त्र हैं। इनमें से चुने हुए १०० मंत्र, जो भाव की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, यहाँ दिए गए हैं। मन के क्या गुण और धर्म हैं? मन की क्या प्रक्रिया है? आदि विषयों का यहाँ विवेचन प्रस्तुत किया गया है। ज्ञानवृद्धि के लिए अनुशीलन की विशेष उपयोगिता है। विज्ञ पाठकों के लिए टिप्पणी में दिया गया व्याकरण आदि का निर्देश विशेष लाभकर सिद्ध होगा। प्रत्येक भाग में दिए मन्त्रों में प्राप्य १०० सुभाषित हिन्दी अर्थ के साथ ग्रन्थ के अन्त में दिए गए हैं। ये सुभाषित कण्ठस्थ करने योग्य हैं।

पुस्तक के प्रकाशन-संबन्धी कार्यों में तथा प्रूफ रीडिंग आदि में चि० धर्मेन्दु, ज्ञानेन्दु, विश्वेन्दु, आर्येन्दु, श्रीमती सविता द्विवेदी एवं डा० विभुराम मिश्र से विशेष सहयोग प्राप्त हुआ है, तदर्थ वे आशीर्वाद के पात्र हैं।

आशा है यह ग्रन्थ सभी वेद-प्रेमियों का आदर प्राप्त करेगा और उनकी वेदों में रुचि बढ़ाएगा।

शान्ति-निकेतन
ज्ञानपुर (वाराणसी)
१-१-८६ ई०

डा० कपिलदेव द्विवेदी

भूमिका

वैदिक मनोविज्ञान

मनोविज्ञान का स्वरूप

वर्तमान समय में मनोविज्ञान एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विज्ञान है। इसे मनोविज्ञान या Psychology कहा जाता है। Psychology शब्द Psycho (ग्रीक Psyche-spirit, Mind, आत्मा, मन) और Logy (ग्रीक Logia, विज्ञान) शब्दों के मेल से बना है। इसका अर्थ है, मन का विज्ञान या मन की विभिन्न स्थितियों का विज्ञान। मन के समस्त क्रिया-कलाप का वैज्ञानिक अध्ययन इसका विषय है। मनोविज्ञान का सम्बन्ध दर्शन और विज्ञान दोनों से है। मन और मन की विविध चेष्टाएँ दर्शन का विषय हैं, अतः यह दर्शन है। मन के विविध क्रियाकलापों का यन्त्रों के द्वारा सूक्ष्मतम निरीक्षण और उनका परीक्षण, उन परीक्षणों से विविध निष्कर्ष निकालना आदि विज्ञान का विषय है, अतः मनोविज्ञान दर्शन और विज्ञान दोनों से संबद्ध है।

मनोविज्ञान के अन्तर्गत संक्षेप में ये विषय लिये जाते हैं :—स्नायु-मण्डल (Nervous System), संवेदना (Sensation), प्रत्यक्षीकरण (Perception), अवधान या ध्यान (Attention), सीखना (Learning), स्मरण (Remembering), विस्मरण (Forgetting), कल्पना (Imagination), चिन्तन (Thinking), भाव या अनुभूति (Feeling), संवेग (Emotion), प्रेरणा (Motivation), चेतना (Consciousness), स्वप्न (Dream), बुद्धि (Intelligence), योग्यताएँ (Aptitude), व्यक्तित्व (Personality), वंशानुक्रम एवं वातावरण (Heredity and Environment), विफलता (Frustration) आदि।

आधुनिक मनोविज्ञान में ज्ञान और विज्ञान के विविध क्षेत्रों को लेकर इसकी अनेक शाखाएँ हो गई हैं। जैसे—बाल-मनोविज्ञान, शिक्षा-मनोविज्ञान, समाज-मनोविज्ञान, उद्योग-मनोविज्ञान, न्याय या विधि-मनोविज्ञान, वाणिज्य-मनोविज्ञान, अपराध-मनोविज्ञान, परामनोविज्ञान, स्नायु-मनोविज्ञान (Neuro-psychology) आदि।

भारतीय चिन्तन की धारा

वेदों में मनोविज्ञान की जो रूपरेखा प्रस्तुत की गई है, उसका कुछ विकसित रूप ब्राह्मणग्रन्थों और उपनिषदों में प्राप्त होता है। जिस प्रकार वर्तमान समय में मनोविज्ञान का विश्लेषणात्मक अध्ययन हो रहा है, उतना विस्तृत और व्यापक अध्ययन प्राचीन समय में प्राप्त नहीं होता है। ब्राह्मणग्रन्थों और उपनिषदों में मन का शास्त्रीय रूप प्रस्तुत किया गया है। इनमें मन के गुण, धर्म, स्वरूप और कार्यों की समीक्षा है। इनका ही यहाँ पर संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

ब्राह्मण ग्रंथों में मन को ब्रह्म कहा गया है।[१] यह सर्वशक्तिमान् है और परमात्मा का स्वरूप है, अतः ब्रह्म है। मन सृष्टि का कर्ता है, अतः उसे ब्रह्मा कहा गया है।[२] इसी कर्तृत्व के आधार पर उसे प्रजापति या सृष्टि-निर्माता बताया गया है।[3] मन की कल्पना से ही यह सारा संसार है। मन जैसा चाहता है, वैसा होता है, अतः उसे सर्वम् (सब कुछ) कहा है।[४] मन की शक्ति अनन्त है, अतः उसे अनन्त और अपरिमित कहा गया है।[५] मन की दिव्य शक्तियों के कारण

---

१. मनो ब्रह्म। गोपथ. १.२.११

२. मनो ब्रह्मा। गोपथ १.२.११

३. मनो वै प्रजापतिः। तैत्ति. ३.७.१.२

४. मन एव सर्वम्। गोपथ. १.५.१५

५. अनन्तं वै मनः, शत. १४.६.१.११; मनो वा अपरिमितम्। कौषी. २६.३,

उसे देव बताया गया है।[१] मन में प्रेरणा शक्ति है, अतः उसे अग्नि कहा गया है।[२] मन कल्पनाओं और शक्तियों का अथाह भण्डार है, अतः उसे समुद्र बताया गया है।[3] मन विचारों का भण्डार है, महानदी है और उसका प्रकाशन वाणी के द्वारा होता है, अतः वाणी को मन की नहर कहा है।[४]

मन प्रजापति या ब्रह्म का विशिष्ट शरीर है।[५] मन का ही काम है कि वह नाना प्रकार की सृष्टि-रचना करता है। मन और वाणी का असाधारण सम्बन्ध है। जो मन सोचता है, वाणी उसे प्रकट करती है।[६] मन में ही आत्मा (चेतना) की प्रतिष्ठा है, अर्थात् मन ही आत्मा के सब काम करता है।[७] मन प्राणों का अधिपति है। मन जिस प्रकार प्राणों को आदेश देता है, उसी प्रकार प्राण चलते हैं।[८] इसका अभिप्राय यह है कि मन के आदेशानुसार स्नायु-मंडल एवं रक्त-प्रवाह का संचालन होता है। समस्त प्रत्यक्षीकरण का काम मन करता है। मन ही देखता है और मन ही सुनता है।[९]

शतपथ ब्राह्मण में बहुत महत्त्वपूर्ण बात कही गई है कि ये सभी तत्त्व मन के ही विभिन्न रूप हैं—काम (इच्छा), संकल्प (विचार), विचिकित्सा

---

१. मनो देवः। गोपथ. १.२.११

२. मन एवाग्निः। शत. १०.१.२.३

३. मनो वै समुद्रः। शत. ७.५.२.५२

४. तस्य (मनसः) एषा कुल्या यद् वाक्। जैमिनीय उप. ब्रा. १.५८.३

५. अपूर्वा (प्रजापतेस्तनूः) तन्मनः। ऐत. ५. २५

६. यद् हि मनसाऽभिगच्छति तद् वाचा वदति। तांड्य ब्रा. ११. १. ३

७. मनसि हि अयमात्मा प्रतिष्ठितः। शत. ६. ७. १. २१

८. मनो वै प्राणानाम् अधिपतिः। शत. १४. ३. २. ३

९. मनसा ह्येव पश्यति, मनसा शृणोति। शत. १४. ४. ३. ८

(ऊहापोह, सन्देह), श्रद्धा, अश्रद्धा, धृति (धैर्य), अधृति (अधीरता), ह्री (लज्जा), धी (ज्ञान), भी (भय, डर, आतंक) ।[1]

इसी प्रकार उपनिषदों में मन के विविध गुण-धर्मों का वर्णन किया गया है। मन महान् शक्ति है, उसका सब पर अधिकार है, वह परमेश्वर-रूप है, अतः उसे सम्राट् और परब्रह्म कहा गया है।[2] मन प्रकाशक और ज्योतिरूप है। वही ज्ञान का दाता है, अतः उसे ज्योति कहा गया है।[3]

मन चेतनारूप (Consciousness) है। मानव का निर्माण चेतना करती है। जैसी मन की प्रवृत्ति होती है, वैसा ही मनुष्य का स्वभाव और व्यक्तित्व विकसित होता है। अतः उपनिषद् का कथन है कि मनुष्य मनोमय है।[4] मनुष्य के मन का अध्ययन उसके व्यक्तित्व का अध्ययन है। उसकी इच्छाएँ, उसके संकल्प, उसके व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। अतः उपनिषद् ने पुरुष को काममय या इच्छा-स्वरूप कहा है।[5]

मन का स्वरूप चेतना है। अतः मन को शरीर में आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।[6] मन में कर्तृत्व और निर्मातृत्व है, अतः वह आत्मरूप है। प्राणमय शरीर से मनोमय शरीर सूक्ष्म है, अतः मनोमय शरीर को सूक्ष्म आत्मा बताया गया है।[7]

---

१. कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिः ह्रीः धीः भीः इत्येतत् सर्वं मन एव । शत. १४. ४. ३. ९
२. मनो वै सम्राट् परमं ब्रह्म । बृहदा. उप. ४. १. ६
३. मनो ज्योतिः । बृहदा. उप. ३. ९. १०
४. अयं पुरुषो मनोमयः । तैत्तिरीय उप. १. ६. १, बृहदा. ५. ६. १
५. अयं काममयः पुरुषः । बृहदा. उप. ३. ९. ११
६. मन एवास्य आत्मा । बृहदा. १.४.१७
७. अन्योऽन्तर आत्मा मनोमयः । तैत्ति. उप. २.३

इस समस्त सृष्टिरूपी यज्ञ में मन ही ब्रह्मा है। वही इस सृष्टिचक्र का निर्देशक है।[१] मन की शक्तियाँ अनन्त हैं, अतः उसे अनन्त कहा गया है।[२] परमात्मा की प्राप्ति का साधन मन है। मन ही परमात्मा का साक्षात्कार करता है।[3]

मन के गुण

अथर्ववेद के एक मन्त्र में सूत्ररूप में मनोविज्ञान के सभी विषयों का उल्लेख है।[४] इसमें 'मनसे' के द्वारा संवेदना (Sensation) और प्रेरणा (Motivation) का ग्रहण है। 'चेतसे' के द्वारा चेतना (Consciousness) और चिन्तन (Thinking) अभिप्रेत है। 'धिये' के द्वारा ध्यान या अवधान (Attention) अभिप्रेत है। 'आकूतये' के द्वारा अनुभूति (Feeling) और संवेग (Emotion) का ग्रहण है। 'चित्तये' के द्वारा चित्त के धर्म स्मरण (Remembering) और तदभावरूप में विस्मरण (Forgetting) का ग्रहण है। 'मत्यै' के द्वारा बुद्धि (Intelligence) अभिप्रेत है। 'श्रुताय' के द्वारा श्रवण, पठन एवं शिक्षण (Learning) का ग्रहण है। 'चक्षसे' के द्वारा चक्षु-कार्य, दर्शन या प्रत्यक्षीकरण (Perception) अभिप्रेत है।

यजुर्वेद के ३४वें अध्याय में 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु' वाले ६ मन्त्रों में मन के सभी महत्त्वपूर्ण गुणों का उल्लेख है। इसमें मन को अतिदूरगामी बताते हुए उसकी तीव्रता का उल्लेख किया गया है। मन न केवल जागृत अवस्था में ही इधर-उधर दूर तक जाता है, अपितु स्वप्न (Dream) अवस्था में भी उसी तरह दूर-दूर तक जाता है। इसको ज्योतियों की ज्योति अर्थात् प्रकाशों का प्रकाशक

---

१. मनो वै यज्ञस्य ब्रह्मा। बृहदा. ३.१.६

२. अनन्तं वै मनः। बृहदा. ३.१.९

३. मनसैवेदमाप्तव्यम्। कठ. २.१.११

४. मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये।
मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम्॥ अथर्व. ६.४१.१, (मंत्र २१)

कहा गया है। यह एक प्रकाश है, जो ज्ञान और विज्ञान के सभी तत्त्वों को प्रकाशित करता है। यह चेतना (Consciousness) का आधार है। (मंत्र २)

इस मन को मानव-हृदय में रहने वाली अमर ज्योति और अपूर्व यक्ष अर्थात् आदरणीय तत्त्व माना गया है। (मंत्र ३ और ४)। मन आत्मा का प्रतिनिधि है, अतः आत्मतत्त्व के तुल्य वह अमर है और प्रकाशरूप है। मन की सत्ता से सब काम होते हैं, अतः उसे अनुपम यक्ष कहा गया है। मन ही प्रेरणा (Motivation) का स्रोत है। इसकी प्रेरणा से सारे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के कार्य होते हैं। (मन्त्र ३)

एक मन्त्र में मन के तीन महत्त्वपूर्ण गुणों का उल्लेख हुआ है। ये हैं—प्रज्ञान (Cognition), चेतस् (Recollection) और धृति (Retention)। साथ ही यह भी कहा गया है कि यह एक ज्योति है। इसके बिना संसार का कोई काम नहीं होता है। (मन्त्र ४)

मन वर्तमान, भूत और भविष्य तीनों कालों में व्याप्त है। तीनों काल मन की सीमा में आते हैं। मन के द्वारा तीनों कालों का दर्शन होता है। कोई ऐसा काल नहीं है, जिसके विषय में मन चिन्तन और मनन न कर सकता हो। (मन्त्र ५)। मन में ही संसार का सारा ज्ञान और बुद्धि (Intelligence) निहित है। इसमें ही चित्त अर्थात् प्रज्ञा शक्ति (Cognition faculty) का समावेश है। (मन्त्र ६)

मन एक योग्य सारथि है। यह इन्द्रियरूपी घोड़ों को ठीक ढंग से नियन्त्रित करता है। इसका निवासस्थान हृदय है। इसकी गति अद्वितीय है और इसमें असाधारण कार्यक्षमता है। (मन्त्र ७)

अनेक मन्त्रों में मन की तीव्र गति का उल्लेख है। मन को वायु के तुल्य तीव्रतम गति वाला बताया गया है। (मन्त्र १०)। मन की गति न केवल पृथ्वी तक ही है, अपितु यह अन्तरिक्ष और द्युलोक तक जाता है। (मन्त्र १२)।

यह संसार भर में घूमता है। कभी भी शान्ति से नहीं बैठता है। (मन्त्र १३)। मन चंचल है, अतः विशिष्ट कार्य के लिए उसको रोककर नियन्त्रित करना आवश्यक है। (मन्त्र १४)। गीता में मन के निग्रह के लिए अभ्यास और वैराग्य को साधन बताया गया है।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते। (गीता ६.३५)

मन के कतिपय अन्य गुणों का भी उल्लेख मिलता है। संसार में व्याप्त शाश्वत नियमों को 'ऋत' कहते हैं। इनकी विभिन्न शाखाएँ हैं, इनको ऋत के तन्तु या सूत्र कहा जाता है। इन सूक्ष्म तत्त्वों का ज्ञान मन के द्वारा होता है। (मन्त्र १५)। मस्तिष्क में विद्यमान स्नायु-तन्तुओं को भी ऋत के तन्तु कहा जाता है। यजुर्वेद का कथन है कि ये ऋत तन्तु या ज्ञान-तन्तु चारों ओर फैले हुए हैं। ऋषि या सूक्ष्मदर्शी ही इन तन्तुओं को देख पाते हैं। जो इनका साक्षात्कार कर लेता है, वह तत्त्वदर्शी हो जाता है। मस्तिष्क में विद्यमान ये तन्तु या सूत्र ज्ञान के साधन हैं, अतः इन्हें ज्ञानतन्तु भी कहा जाता है।

ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य,
तदपश्यत् तदभवत् तदासीत् ॥ यजु० ३२.१२

मन त्रिकालदर्शी है। वर्तमान, भूत और भविष्य सर्वत्र इसकी गति है। (मन्त्र १६)। मन ही वाक्तत्त्व का धारक है। वाक्तत्त्व में संसार का सारा ज्ञान निहित है, अतः मन ज्ञानमात्र का धारक और प्रेरक है। (मन्त्र १८)। मन को हृदय का निर्देशक कहा गया है, अतः मन हृदय को आदेश करता है। (मन्त्र १७)

मन का कार्य चिन्तन और संकल्प-विकल्प (Thinking) है। ऊहापोह, तर्क-वितर्क, गुण-दोष का विचार और विविध कल्पनाएं (Imagination) मन का विषय हैं। अतः कहा गया है कि मन से संकल्प करता है। (मन्त्र १९)। यजुर्वेद में भी मन के गुण काम (Desire) और आकूति (Intention, will) बताए गए हैं। (मन्त्र २०)

ऋग्वेद में मन के दो गुणों का उल्लेख है। मन ज्ञान और कर्म का साधन है। अतः उसे दक्ष अर्थात् ज्ञानयुक्त और क्रतु अर्थात् क्रियाशील कहा गया है। (मन्त्र २२)। मन ज्ञेय वस्तुओं को ग्रहण करता है, अतः ज्ञान का साधन है। वह उस ज्ञान के आधार पर तदनुकूल प्रेरणा देता है और कार्य कराता है, अतः वह प्रेरणा (Motivation) का स्रोत है। एक मन्त्र में बुद्धि (Intelligence) का कार्य बताया गया है कि वह मन को चेतना देती है। मन को प्रेरणा देना, उसे कार्यों में नियुक्त करना तथा ध्यान और एकाग्रता की क्षमता प्रदान करना बुद्धि का कार्य है। (मन्त्र २५)

अथर्ववेद में एक मंत्र में प्रत्यक्षीकरण (Perception) की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है। संवेदनाओं (Sensations) को ५ ज्ञानेन्द्रियाँ ग्रहण करती हैं और मन के द्वारा इनका प्रत्यक्षीकरण होता है। अतः ५ ज्ञानेन्द्रियाँ और मन ये ६ मिलकर प्रत्यक्षीकरण का कार्य पूरा करते हैं। (मंत्र २४)

मन की विशेषताएँ

मन की अनन्त विशेषताएँ हैं। संसार का ऐसा कोई सुख-दुःख, हानि-लाभ, ज्ञान-विज्ञान, उद्योग, संघर्ष, द्वन्द्व, चिन्तन, कल्पना, अनुभूति और अभीष्ट लाभ नहीं है, जो मन के कार्यक्षेत्र में न आता हो। मन को सहस्रकिरण या असंख्य-शक्ति कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं है। मन द्यावापृथिवी, लोक-परलोक, वर्तमान, भूत और भविष्य सभी को अपनी परिधि में रखता है। अतः वेदों में इसकी अनन्त शक्तियों का उल्लेख है।

अथर्ववेद का कथन है कि मन वशीकरण का साधन है। मन दूसरे के मन को आकृष्ट करता है, उसे वश में कर लेता है और इच्छानुसार उसे यथास्थान प्रवृत्त करता है। (मंत्र २७)। मेस्मरिज्म और हिप्नॉटिज्म (Mesmerism & Hypnotism) मन के द्वारा वशीकरण के सफल प्रयोग हैं। साधना और तप के द्वारा मन की चुम्बकीय शक्ति को विकसित किया जाता है।

शुद्ध एवं पवित्र मन की विशेषता बताई गई है कि इसके द्वारा तेजस्विता, समृद्धि और शारीरिक नीरोगता आदि प्राप्त की जाती हैं। (मंत्र २८)। शारीरिक नीरोगता का साधन मानस-चिकित्सा है। मन की शुद्धि शरीर के मल और विक्षेपों को दूर करती है।

मन संजीवनी शक्ति है। यह निर्जीव को सजीव और अक्षम को सक्षम बना देती है। इसमें संजीवनी शक्ति है। यह चेतनता प्रदान करता है और कर्म में प्रवृत्ति कराता है। इस प्रकार मन चेतना और प्रेरणा का मूल है। (मंत्र ३७)। मन की शक्तियों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि मनोबल से मृत्यु को वश में किया जा सकता है। मरणासन्न को मृत्यु से बचाया जा सकता है। जिस प्रकार मोटी रस्सी से जूए को कसा जाता है, उसी प्रकार मन के द्वारा मृत्यु को भी कस कर वश में लाया जा सकता है। (मंत्र ३४, ३५)

मन की पवित्रता, विचारों की शुद्धि और तपस्या को मुक्ति का साधन माना गया है। (मंत्र २९)। मन यदि शुद्ध है तो मनुष्य जीवन-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है। यदि वह अशुद्ध है तो मनुष्य सदा बन्धन से ग्रस्त रहता है। अतएव कहा गया है कि मन ही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण है।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः। शाट्यायनीय उप० १

विचारों की शुद्धता का फल बताया गया है कि इससे सारे मनोरथ सफल होते हैं। साथ ही यह भी बताया गया है कि विचारों की शुद्धि का एकमात्र साधन है—पापों से निवृत्ति, बुराइयों से बचना या कुकर्मों को छोड़ना। (मंत्र ३१)। मन की पवित्रता से पापों पर विजय प्राप्त की जाती है। मन की पवित्रता सभी प्रकार के युद्धों में विजयप्राप्ति का अमोघ साधन है। पाप को वृत्र कहा गया है। शुभ विचारों से वृत्र का वध किया जाता है। (मंत्र ३०)

जैसा मनुष्य का हृदय होता है, उसी प्रकार उसकी बुद्धि होती है। विचारों और भावनाओं की शुद्धि बुद्धि के परिष्कार का साधन है। अतः कहा गया है कि शुद्ध हृदय से बुद्धि को परिष्कृत करता हूँ। (मंत्र ३३)

अनेक मंत्रों में मनोबल या इच्छाशक्ति (Will-power) का महत्त्व-वर्णन किया गया है। मनोबल वह शक्ति है, जिसे कोई दबा नहीं सकता है। यह

अघर्षणीय है। मनोबल पहाड़ से भी अधिक शक्तिशाली है। दृढ निश्चय को पहाड़ भी नहीं रोक सकते हैं। (मंत्र ३८)। मनोबल का यह महत्त्व है कि मनुष्य जीवन में कभी हारना नहीं जानता। सदा विजय-लाभ करता है। वह मृत्यु से भी हार नहीं मानता। मृत्यु को वश में रखता है। (मंत्र ३९)

मनोबल वह शक्ति है, जिससे विश्वविजय की जाती है। मंत्र का कथन है कि मनोबल से द्युलोक और पृथिवी को जीतता हूँ। (मन्त्र ४०)। मनोबल से युक्त व्यक्ति को चारों दिशाएँ प्रणाम करती हैं। सारी पृथिवी उसके लिए सुख-समृद्धि देती है। (मन्त्र ४१)। मनोबल को काम या कामना शब्द से संबोधित करते हुए कहा गया है कि वह अपनी सामर्थ्य से प्रतिष्ठित है। उसके लिए किसी दूसरे सहायक की आवश्यकता नहीं है। वह युद्धों में विजयी बनाता है, ओज देता है और तेजोमय है। (मन्त्र ४२)

मनोबल का उपयोग जनहित या जनकल्याण के लिए भी होता है। जनहित के लिए मंत्र में नाराशंस शब्द का प्रयोग है। जनहितकारी मन का आह्वान किया गया है। (मंत्र ४३)। मनोबल एवं तीव्र संकल्प का फल बताया गया है कि मनुष्य जो कुछ चाहता है, वह उसे प्राप्त हो जाता है। उसके मनोरथ सिद्ध होते हैं। (मंत्र ४४)। मन अभीष्टसिद्धि में रथ का काम करता है और प्रार्थित वस्तु लाकर उपस्थित करता है, अतः उसे रथ की उपमा दी गई है। (मंत्र ३६)

मनोबल से असंभव कार्यों को भी संभव बनाया जा सकता है। मनोबल शक्ति का स्रोत है। (मंत्र ४५)। मनोबल मनुष्य को अजेय बना देता है। दो-चार नहीं, सैकड़ों शत्रु उसे परास्त नहीं कर सकते हैं। वह शत्रुओं को खलिहान में धान की पूली की तरह रौंद देता है। (मंत्र ४६)। मनोबल से पापी और आक्रामक को निष्प्रभाव बना दिया जाता है। (मंत्र ९१)

इच्छाशक्ति के विविध उपयोग

वेदों में इच्छाशक्ति (Will-power) के लिए आकूति और काम शब्द मिलते हैं। इच्छाशक्ति का अनेक प्रकार से महत्त्व बताया गया है। उसको अनेक-रूपों में प्रस्तुत किया गया है।

इच्छाशक्ति सौभाग्य की देवी है। यह मन में रहती है। यह विचार और चिन्तन की जननी है। इसको आगे रखकर सभी महत्त्वपूर्ण कार्य किए जाते हैं। (मंत्र ५४)। यह इच्छाशक्ति ऐश्वर्य का स्रोत है। यही मनुष्य को सफलता दिलाकर समृद्ध करती है। (मंत्र ५५)। इच्छाशक्ति को मानवीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अध्यक्ष या संचालक बताया गया है। यही मानव को प्रेरणा देती है, शत्रुओं को नष्ट करती है और सभी को सहयोगी बनाती है। जहाँ प्रबल इच्छाशक्ति होती है, वहाँ सभी सहायक होने लगते हैं। (मंत्र ५७)

इच्छाशक्ति को अभेद्य कवच बताया गया है। इसका संरक्षण सर्वोत्कृष्ट है। यह तीन प्रकार से रक्षा करती है। आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार की विपत्तियों से यह मानव की रक्षा करती है। इसको 'ब्रह्म वर्म' अर्थात् ज्ञान-कवच या आत्मबलरूपी कवच कहा गया है। इसके द्वारा सभी विपत्तियों, कष्टों और शत्रुओं को जीता जाता है। (मंत्र ५८)

इच्छाशक्ति के वश में सभी देवगण हैं। सभी देवों और देवताओं की उत्पत्ति इच्छाशक्ति से हुई है। यह उनका मार्गदर्शन करती है। शरीर के अन्दर विद्यमान इन्द्रियरूपी देवता और बाह्यजगत् में विद्यमान पृथिवी आदि देवता सब इच्छा-शक्ति के नियन्त्रण में हैं। (मंत्र ६३)

यह कामनारूपी इच्छाशक्ति स्थावर जंगम और समुद्र आदि से भी महान् है। महत्ता में इसके समान कोई नहीं है। (मंत्र ५९)। जो कार्य इच्छाशक्ति कर सकती है. वह कोई नहीं कर सकता, अतः यह सबसे महान् है। इस इच्छा-शक्ति का आदि और अन्त नहीं है। इसे अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु आदि कोई नहीं पा सकता है। अतः यह सबसे बढ़कर है। (मंत्र ६०)। यही मानवमात्र की कामनाएं पूर्ण करती है और अभीष्ट की साधक है। (मंत्र ६१)

इच्छशक्ति से ही जीवन में श्रेष्ठता आती है। इससे ही देवता श्रेष्ठ हुए। अतएव देवों को 'कामज्येष्ठाः' कहा गया है। (मंत्र ६२)। इच्छाशक्ति को कामधेनु कहा गया है। यह सभी की कामनाओं को पूर्ण करती है, अतः कामधेनु है। इच्छाशक्ति से विचार उद्बुद्ध होते हैं। विचारों की अभिव्यक्ति वाणी

से होती हैं। अतः विराट् वाक्तत्त्व को काम की पुत्री बताया गया है। (मंत्र ५६)

इच्छाशक्ति और उत्साह परस्पर संबद्ध हैं। अतः इनका एक मंत्र में पति-पत्नी के रूप में वर्णन किया गया है। संकल्प (विचार) की पुत्री इच्छा है और इसका मन्यु (उत्साह) के साथ विवाह हुआ। संकल्प या विचारों से इच्छाशक्ति जन्म लेती है और वह उत्साह के साथ कार्य में प्रवृत्त होती है। (मंत्र ६४)

विचारों का प्रभाव

विचार (Thoughts) मानव को सदा प्रभावित करते रहते हैं। जीवन का निर्माण विचारों के अनुसार होता है। शुभ विचार उन्नति, विकास, प्रगति और दीर्घायु के साधन हैं तथा अशुभ विचार रोग, शोक, दैन्य और अल्पायु के कारण हैं। (मंत्र ६६)। शुभ विचार सदा समृद्धि का मार्ग प्रशस्त करते हैं। ये अधृष्य, अप्रतिहत और उन्नतिकारक हैं। शुभ विचार देव-कृपा का फल है, अतः शुभ विचारों में देवों का निवास है। इसलिए मंत्र में प्रार्थना की गई है कि शुभ विचार सभी ओर से आवें। (मंत्र ६७)। शुभ विचार पापभावना नष्ट करते हैं। जीवन में विजय दिलाते हैं और वृत्ररूपी पाप को नष्ट करके आत्मशक्ति को विजयी बनाते हैं। (मंत्र ६८)

विचारशक्ति में ऊर्जा है, गति है, शक्ति है और प्रभावकता है। विचार-शक्ति का उद्बोधन, संप्रेषण और संक्रमण सभी कुछ हो सकता है। इसमें अजेयता है, आकर्षण शक्ति है और दुर्गुणों के निरोध की क्षमता है। इसके आधार पर ही जीवन में समरसता और विषमता आती है। अनेक मंत्रों में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है।

विचारशक्ति का संप्रेषण होता है। प्रेम आदि के विचार अपने प्रिय या प्रिया तक पहुँचाये जाते हैं। (मंत्र ६९)। भक्त की कामनाओं को अभीष्ट देव सुनते हैं और पूरा करते हैं। (मंत्र ७०)। विचारों का संक्रमण होता है। अपने हृदय के विचार दूसरे के हृदय में संक्रमित किये जाते हैं। (मंत्र ७१)। विचारों में आकर्षण शक्ति है। दूसरे के इधर-उधर गए मन को लौटाकर लाया जा सकता है।

(मंत्र ७२)। विचारों की पवित्रता मनुष्य को अजेय बना देती है। दुर्जनों आदि के कटु प्रहार उस पर निष्प्रभाव हो जाते हैं (मंत्र ७३)

विचार-शुद्धि से काम आदि भावनाओं पर विजय प्राप्त की जाती है। (मंत्र ७४)। विचार-शुद्धि जीवन में समरसता लाती है। इससे शुभ-अशुभ सभी को समभाव से ग्रहण किया जाता है। (मंत्र ७५)। विचार-शुद्धि से पाप-प्रवृत्ति का नाश होता है, अतः परमात्मा का क्रोधरूपी बाण उस पर कभी नहीं पड़ता। (मंत्र ७६)। देवता पापी और पुण्यात्मा को जानते हैं। जहाँ शुभ विचार है, वहाँ देवों का निवास है। (मंत्र ७७)। विचारों की शुद्धि से ही आत्मा का साक्षात्कार किया जाता है। (मंत्र ७८)। जब तक दुर्विचारों को नष्ट नहीं किया जाता, तबतक सुख का मार्ग प्रशस्त नहीं होता। (मंत्र ७९)। जिस प्रकार शुभ विचारों का संक्रमण और संप्रेषण होता है , उसी प्रकार दुर्विचारों का भी संप्रेषण और संक्रमण होता है। अभिचार के कृत्यों में दुर्विचारों का संप्रेषण किया जाता है। (मंत्र ८०)

संकल्पशक्ति का महत्त्व

वेदों में संकल्पशक्ति का वर्णन काम शब्द के द्वारा हुआ है। संसार में सबसे पहले संकल्पशक्ति का आविर्भाव हुआ। उससे ही सारी सृष्टि बनी। (मंत्र ८२)। संकल्प शक्ति सबसे महान् है। यह द्यावापृथिवी से भी उत्कृष्ट है। (मंत्र ८३)। संकल्पशक्ति मन का सार भाग है, अतः इसे मन का रेतस् या वीर्य कहा गया है। (मंत्र ८४)। संकल्पशक्ति आग्नेय तत्त्व है, अतः इसे अग्नि कहा गया है। (मंत्र ८५)। सभी प्रकार के यज्ञों से संकल्पशुद्धि को अधिक प्रभावशाली बताया गया है। (मंत्र ८६)। संकल्पशुद्धि से कुस्वप्न आदि दोषों का निराकरण किया जाता है। (मंत्र ८७)

वेदों में मनोबल या मनःशक्ति को क्षीण करने वाले कुछ तत्त्वों का उल्लेख है। इनमें मुख्य हैं—पाप-भावना, ईर्ष्या और काम-भावना। इनके निरोध से मनोबल पुष्ट होता है। (मन्त्र ३२,६५,९३ से ९५)।

●

संकेत-सूची

१	—एकवचन	दिवादि०	—दिवादिगण
२	—द्विवचन	द्वि०	—द्वितीया विभक्ति
३	—बहुवचन	नपुं०	—नपुंसक लिंग
अथर्व०	—अथर्ववेद संहिता	पं०	—पंचमी विभक्ति
अदादि०	—अदादिगण	पा०	—पाणिनीय अष्टाध्यायी
आशी०	—आशीर्लिङ्	पु०	—पुंलिग
Inj.	—Injuncitve	पु०	—पुरुष
उणादि०	—उणादि सूत्र	प्र०,प्र०पु०	—प्रथम पुरुष, प्रथमा
उ०, उ० पु०	—उत्तम पुरुष	प्रथमा	—प्रथमा विभक्ति
उप०	—उपनिषद्	ब्रा०	—ब्राह्मण
ऋग्०	—ऋग्वेद संहिता	भ्वादि०	—भ्वादिगण
ऐत०	—ऐतरेय ब्राह्मण	म०, म० पु०	—मध्यम पुरुष
		मनु०	—मनुस्मृति
क्र्यादि०	—क्र्यादिगण	यजु०	—यजुर्वेद संहिता
गोपथ पू०	—गोपथ ब्राह्मण पूर्वभाग	रुधादि०	—रुधादिगण
		विदुर०	—विदुरनीति
गोपथ उ०	—गोपथ ब्राह्मण उत्तरभाग	विधि०	—विधिलिङ्
च०	—चतुर्थी विभक्ति	शत०	—शतपथ ब्राह्मण
चुरादि०	—चुरादिगण	ष०	—षष्ठी विभक्ति
जुहोत्यादि०	—जुहोत्यादिगण	सं०	—संबोधन
तनादि०	—तनादिगण	स०	—सप्तमी विभक्ति
ता०, तां०	—तांड्य ब्राह्मण	साम०	—सामवेद संहिता
तुदादि०	—तुदादिगण	Sub.	—Subjunctive
तृ०	—तृतीया विभक्ति	स्त्री०	—स्त्रीलिंग
तैत्ति०	—तैत्तिरीय ब्राह्मण	स्वादि०	—स्वादिगण

वैदिक मनोविज्ञान

विषयानुक्रमणी

मन्त्रसंख्या	मन्त्र	शीर्षक	पृष्ठ
१.	भूर्भुवः स्वः । तत् सवितु०	बुद्धि सन्मार्ग पर चले ।	१
२.	यज्जाग्रतो दूरमुदैति	मन की गति अज्ञेय ।	३
३.	येन कर्माण्यपसो	मन ही मानव का प्रेरक ।	५
४.	यत् प्रज्ञानमुत चेतो	मन अमर ज्योति है ।	७
५.	येनेदं भूतं भुवनं	मन त्रिकाल का अधिष्ठाता है ।	९
६.	यस्मिन्नृचः साम	मन ज्ञान का अधिष्ठाता है ।	११
७.	सुषारथिरश्वानिव	मन ही मानव का नियन्ता है ।	१२
८.	यद् देवा देवान्	मन अविनश्वर है ।	१४
९.	अवः परेण पितरं	मन दैवी शक्ति है ।	१६
१०.	वातो वा मनो वा	मन शक्ति का स्रोत ।	१७
११.	यथा मनो मनस्केतैः	मन की गति अतितीव्र ।	१९
१२.	यत् ते दिवं यत्	मन की गति असीम है ।	२०
१३.	यत् ते विश्वमिदं	मन की गति विश्वव्यापी ।	२२
१४.	आ ते मह इन्द्रोत्युग्र	मन की गति बहुमुखी ।	२३
१५.	अष्टधा युक्तो वहति	मन सूक्ष्म तत्त्वों का ज्ञाता ।	२४
१६.	यत् ते भूतं च भव्यं	मन त्रिकालदर्शी ।	२६
१७.	आ यन्मा वेना अरुहन्	मन हृदय का निर्देशक ।	२७
१८.	पतङ्गो वाचं मनसा	मन अक्षय ज्ञान का कोष ।	२९
१९	मनसा सं कल्पयति	मन का कार्य चिन्तन ।	३०
२०.	मनसः काममाकूतिं	मन संकल्पशक्ति का स्रोत ।	३२
२१.	मनसे चेतसे धिय०	मन के विविध गुण ।	३३
२२.	भद्रं नो अपि वातय	मन के गुण–ज्ञान और कर्म ।	३५
२३.	अपेहि मनसस्पते	मन का कार्यक्षेत्र व्यापक ।	३६
२४.	इमानि यानि पञ्चे०	मन के सहायक तत्त्व ।	३८
२५.	इन्द्र यस्ते नवीयसीं	बुद्धि से मन को चेतना ।	३९

मन्त्रसंख्या	मन्त्र	शीर्षक	पृष्ठ
२६.	इदं यत् परमेष्ठिनं	मन से शुभ अशुभ की सृष्टि ।	४१
२७.	अहं गृभ्णामि मनसा	मन के द्वारा वशीकरण ।	४३
२८.	सं वर्चसा पयसा	पवित्र मन सर्वसुखदाता ।	४५
२९.	यज्ञं यन्तं मनसा	शुद्ध मन और तप से मुक्ति ।	४७
३०.	भद्रं मनः कृणुष्व	मन की शुद्धि से पापनाश ।	४८
३१.	मह्यं यजन्तु मम	निष्पाप मन से अभीष्टसिद्धि ।	५०
३२.	परोऽपेहि मनस्पाप	मन से पापभावना हटाएँ ।	५२
३३.	अहं तष्टेव बन्धुरं	शुद्ध हृदय से बुद्धि का परिष्कार ।	५३
३४.	यथा युगं वरत्रया	मनोनिग्रह से मृत्युंजय ।	५५
३५.	यमादहं वैवस्वतात्	मनोनिग्रह से मृत्यु पर विजय ।	५६
३६.	मनो अस्या अनः	मन एक रथ है ।	५८
३७.	आ न एतु मनः पुनः	मन संजीवनी शक्ति है ।	५९
३८.	न वा उ मां वृजने	मनोबल अधर्षणीय है ।	६१
३९.	अहमिन्द्रो न परा	मनोबल से व्यक्ति अजेय ।	६२
४०.	अभि द्यां महिना	मनोबल से विश्वविजय ।	६४
४१.	अवधीत् कामो मम	मनोबल से दिग्विजय ।	६५
४२.	त्वं काम सहसासि	मनोबल सदा विजयी ।	६७
४३.	मनो न्वाह्वामहे	मनोबल लोककल्याण के लिए ।	६९
४४.	यामैच्छाम मनसा	मनोबल से अभीष्टसिद्धि ।	७०
४५.	हन्ताहं पृथिवीमिमां	मनोबल से असंभव भी संभव ।	७२
४६.	अभीदमेकमेको	मनोबल से शत्रुनाशन ।	७३
४७.	युञ्जते मन उत	मन और बुद्धि का समन्वय ।	७५
४८.	त्वं धियं मनोयुजं	मन-बुद्धि के समन्वय से सुख ।	७७
४९.	संज्ञपनं वो मनसो	हृदय और मन में समन्वय हो ।	७८
५०.	यो वः शुष्मो हृदये	मन और हृदय में समन्वय हो ।	८०
५१.	सं वः पृच्यन्तां तन्वः	मन और कर्म में समन्वय हो ।	८१

मंत्र सं०	मंत्र	शीर्षक	पृष्ठ
५२.	सं वो मनांसि सं व्रता	मन और कर्म समान हों।	८३
५३.	संज्ञानं नः स्वेभिः	सांमनस्य से सद्भाव।	८५
५४.	आकूतिं देवीं सुभगां	इच्छाशक्ति सौभाग्यदेवी।	८६
५५.	आकूत्या नो बृहस्पते	इच्छाशक्ति ऐश्वर्यदात्री।	८८
५६.	सा ते काम दुहिता	इच्छाशक्ति कामधेनु है।	८९
५७.	अध्यक्षो वाजी मम	इच्छाशक्ति प्रबल संचालक है।	९१
५८.	यत् ते काम शर्म	इच्छाशक्ति अभेद्य कवच है।	९२
५९.	ज्यायान् निमिषतोऽसि	इच्छाशक्ति समुद्र से भी महान्।	९४
६०.	न वै वातश्चन	इच्छाशक्ति अत्यन्त दुर्लभ।	९५
६१.	यत् काम कामयमाना	इच्छाशक्ति से अभीष्टसिद्धि।	९७
६२.	इदमाज्यं घृतवत्	विचारशक्ति से श्रेष्ठता।	९८
६३.	बृहस्पतिर्म आकूतिम्	इच्छाशक्ति के वश में सभी देव।	१००
६४.	यन्मन्युर्जायामावहत्	इच्छाशक्ति और उत्साह।	१०२
६५.	म्रोको मनोहा खनो	इच्छाशक्ति के रोधक तत्त्व।	१०४
६६.	भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम	शुभ विचारों से दीर्घायु।	१०६
६७.	आ नो भद्राः क्रतवो	शुभ विचारों से समृद्धि।	१०८
६८.	भद्रा उत प्रशस्तयो	शुभ विचार से पापनाशन।	११०
६९.	अनुमतेऽन्विदं	विचारशक्ति का संप्रेषण।	१११
७०.	दूराच्चकमानाय	विचारों में संप्रेषणशक्ति।	११३
७१.	कामेन मा काम आगन्	विचारों में संक्रमणशक्ति।	११५
७२.	यद् वो मनः परागतं	विचारों में आकर्षणशक्ति।	११७
७३.	यो मा पाकेन मनसा	विचारशुद्धि से अजेयता।	११८
७४.	यं देवाः स्मरमसिञ्चन्	विचारशुद्धि से कामनिरोध।	१२०
७५.	शिवास्त एका अशिवा०	विचारशुद्धि से समरसता।	१२२
७६.	सं जानामहै मनसा	सद्विचार से पापनाश।	१२४
७७.	पाकत्रा स्थन देवा	सद्विचार से देवकृपा।	१२६

मंत्र सं०	मंत्र	शीर्षक	पृष्ठ
७८.	पतङ्गमक्तमसुरस्य	सद्विचार से आत्मसाक्षात्कार।	१२७
७९.	अभि प्र भर धृषता	कुविचारों के नाश से सुख।	१२९
८०.	ऋणाद् ऋणमिव	दुर्विचारों का भी संक्रमण।	१३१
८१.	नानानं वा उ नो धियो	विचारभेद से प्रवृत्तिभेद।	१३२
८२.	कामो जज्ञे प्रथमो	संकल्पशक्ति से सृष्टि-उत्पत्ति।	१३३
८३.	यावती द्यावापृथिवी	संकल्पशक्ति सबसे महान्।	१३५
८४.	कामस्तदग्रे समवर्तत	संकल्पशक्ति मन की विभूति।	१३६
८५.	आकूतिमग्निं प्रयुजं	संकल्पशक्ति आग्नेय तत्व।	१३८
८६.	यत् पुरुषेण हविषा	संकल्पशुद्धि सर्वोत्तम यज्ञ।	१४०
८७.	यन्मे मनसो न प्रियं	संकल्पशक्ति से अशुभ-निवारण।	१४१
८८.	य उशता मनसा सोमम्	तीव्र संकल्प से अभीष्टसिद्धि।	१४३
८९.	यास्ते विशस्तपसः	शिव संकल्प से आत्मज्ञान।	१४४
९०.	वशा माता राजन्यस्य	चेतना का मूल वाक्तत्त्व।	१४६
९१.	योऽस्मान् चक्षुषा	मनोबल से पापी पर विजय।	१४७
९२.	इह तेऽसुरिह प्राणः	मंत्रशक्ति से मन का उद्धार।	१४९
९३.	अदो यत् ते हृदि श्रितं	ईर्ष्या से मानसिक पतन।	१५०
९४.	अग्नेरिवास्य दहतो	सद्विचार से ईर्ष्या-निवारण।	१५१
९५.	न स स्वो दक्षो वरुण	पाप के कारण।	१५३
९६.	समित् तमघमश्नवत्	पापी ही पाप-फल-भोक्ता।	१५५
९७.	इन्द्रासोमा समघशंसम्	पापी को महादुःख।	१५६
९८.	अजैष्माद्यासनाम	दुर्विचार का फल पापी को।	१५८
९९.	यास्ते शिवास्तन्वः	काम के दो रूप-शुभ,अशुभ।	१६०
१००.	स्तुता मया वरदा	वरदा वेदमाता।	१६२
	परिशिष्ट	सुभाषित-संग्रह	१६५–१७२

मन्त्रानुक्रमणिका

मन्त्र	मन्त्रसंख्या
अग्नेरिवास्य दहतो	९४
अजैष्माद्यासनाम	९८
अदो यत् ते हृदि श्रितं	९३
अध्यक्षो वाजी मम	५७
अनुमतेऽन्विदं	६९
अपेहि मनसस्पते	२३
अभि द्यां महिना	४०
अभि प्र भर धृषता	७९
अभीदमेकमेको	४६
अवः परेण पितरं	९
अवधीत् कामो मम	४१
अष्टधा युक्तो वहति	१५
अहं गृभ्णामि मनसा	२७
अहं तष्टेव बन्धुरं	३३
अहमिन्द्रो न परा	३९
आकूतिं देवीं सुभगां	५४
आकूतिमग्निं प्रयुजं	८५
आकूत्या नो बृहस्पते	५५
आ ते मह इन्द्रोत्युग्र	१४
आ न एतु मनः पुनः	३७
आ नो भद्राः क्रतवो	६७
आ यन्मा वेना अरुहन्	१७
इदं यत् परमेष्ठिनं	२६
इदमाज्यं घृतवत्	६२

मन्त्र	मन्त्रसंख्या
इन्द्र यस्ते नवीयसीं	२५
इन्द्रासोमा समघशंसम्	९७
इमानि यानि पञ्चे०	२४
इह तेऽसुरिह प्राणः	९२
ऋणाद् ऋणमिव	८०
कामस्तदग्रे समवर्तत	८४
कामेन मा काम आगन्	७१
कामो जज्ञे प्रथमो	८२
ज्यायान् निमिषतोऽसि	५९
त्वं काम सहसासि	४२
त्वं धियं मनोयुजं	४८
दूराच्चकमानाय	७०
न वा उ मां वृजने	३८
न वै वातश्चन	६०
न स स्वो दक्षो वरुण	९५
नानानं वा उ नो धियो	८१
पतङ्गमक्तमसुरस्य	७८
पतङ्गो वाचं मनसा	१८
परोऽपेहि मनस्पाप	३२
पाकत्रा स्थन देवा	७७
बृहस्पतिर्म आकूतिम्	६३
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम	६६
भद्रं नो अपि वातय	२२
भद्रं मनः कृणुष्व	३०

मन्त्र	मन्त्रसंख्या	मन्त्र	मन्त्रसंख्या
भद्रा उत प्रशस्तयो	६८	यामैच्छाम मनसा	४४
भूर्भुवः स्वः, तत् सवितुः	१	यमादहं वैवस्वतात्	३५
मनसः काममाकूतिम्	२०	यस्मिन्नृचः साम	६
मनसा सं कल्पयति	१९	यावती द्यावापृथिवी	८३
मनसे चेतसे धिय	२१	यास्ते विशस्तपसः	८९
मनो अस्या अनः	३६	यास्ते शिवास्तन्वः	९९
मनो न्वाह्वामहे	४३	युञ्जते मन उत	४७
मह्यं यजन्तु मम	३१	येन कर्माण्यपसो	३
म्रोको मनोहा खनो	६५	येनेदं भूतं भुवनं	५
यं देवाः स्मरमसिञ्चन्	७४	यो मा पाकेन मनसा	७३
य उशता मनसा सोमम्	८८	यो वः शुष्मो हृदये	५०
यज्जाग्रतो दूरमुदैति	२	योऽस्मान् चक्षुषा	९१
यज्ञं यन्तं मनसा	२९	वशा माता राजन्यस्य	९०
यत् काम कामयमाना	६१	वातो वा मनो वा	१०
यत्ते काम शर्म	५८	शिवास्त एका अशिवा	७५
यत्ते दिवं यत्	१२	सं जानामहै मनसा	७६
यत्ते भूतं च भव्यं	१६	संज्ञपनं वो मनसो	४९
यत्ते विश्वमिदं	१३	संज्ञानं नः स्वेभिः	५३
यत् पुरुषेण हविषा	८६	सं वर्चसा पयसा	२८
यत् प्रज्ञानमुत चेतो	४	सं वः पृच्यन्तां तन्वः	५१
यथा मनो मनस्केतैः	११	सं वो मनांसि सं व्रता	५२
यथा युगं वरत्रया	३४	समित् तमघमश्नवत्	९६
यद् देवा देवान्	८	सा ते काम दुहिता	५६
यद् वो मनः परागतं	७२	सुषारथिरश्वानिव	७
यन्मन्युर्जायामावहत्	६४	स्तुता मया वरदा	१००
यन्मे मनसो न प्रियं	८७	हन्ताहं पृथिवीमिमां	४५

ओम्

वेदामृतम्

भाग–८

वैदिक मनोविज्ञान

बुद्धि सन्मार्ग पर चले (गायत्री मन्त्र)

**ओं भूर्भुवः स्वः । तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥**

यजु० ३६.३; ३.३५; २२.९; ३०.२; ऋग्० ३.६२.१०; साम० १४६२; तैत्ति० सं० १.५.६.४; ४.१.११.१, तैत्ति० आ० १.११.२

अन्वय—ओं भूः भुवः स्वः । सवितुः देवस्य तत् वरेण्यं भर्गः धीमहि । यः नः धियः प्रचोदयात् ।

शब्दार्थ—(ओम्) रक्षक परमात्मन्, (भूः) सत्-स्वरूप, (भुवः) चित्-स्वरूप, (स्वः) आनन्द-स्वरूप, (सवितुः) संसार के उत्पादक, (देवस्य) दिव्यगुणयुक्त परमात्मा के, (तत्) उस, (वरेण्यम्) सर्वश्रेष्ठ, (भर्गः) तेज को, (धीमहि) धारण करते हैं । (यः) जो परमात्मा, (नः) हमारी, (धियः) बुद्धियों को, (प्रचोदयात्) सत्कर्मों में प्रेरित करे ।

हिन्दी अर्थ—सच्चिदानन्द-स्वरूप, संसार के उत्पादक, देव परमात्मा के उस सर्वोत्कृष्ट तेज को हम धारण करते हैं । वह परमात्मा हमारी बुद्धियों को सत्कर्मों में प्रेरित करे ।

Eng. Tr.—O Supreme Lord, thou art the source of existence, intelligence and bliss, creator of the universe. We cherish thy luminous lustre. Vouchsafe an un-erring guidance to our intellects.

अनुशीलन—मानव-जीवन को सुखी बनाने के लिए दो बातों की सबसे अधिक आवश्यकता है–आस्तिकता और बुद्धि की शुद्धता की। ये दोनों कार्य गायत्री मन्त्र से सिद्ध होते हैं। गायत्री का अर्थ है—गय और गाय का अर्थ है—प्राण। प्राणा वै गयाः (शतपथ ब्रा० १४.८.१५.७)। गयाः प्राणाः, गयाः एव गायाः, तान् त्रायते इति गायत्री। गाय अर्थात् प्राणों की रक्षा करने वाले को गायत्री कहते हैं। गायत्री के जप से प्राणशक्ति की वृद्धि होती है और शारीरिक तथा बौद्धिक न्यूनता दूर होती है। गायत्री को सावित्री भी कहते हैं। सविता अर्थात् सूर्य या ब्रह्म से संबद्ध होने से यह सावित्री मन्त्र है। इसके द्वारा शरीर में सौर शक्ति की उत्पत्ति होती है।

गायत्री ही ब्रह्मवर्चस् या ब्रह्मतेज है। गायत्री ब्रह्मवर्चसम् (तैत्तिरीय ब्रा० २.७.३.३), तेजो ब्रह्मवर्चसं गायत्री (कौषीतकि ब्राह्मण १७.२)। गायत्री के नियमित जप से ब्रह्मवर्चस् प्राप्त होता है। इस ब्रह्मवर्चस् से ही मनुष्य संयमी, जितेन्द्रिय और मनोनिग्रही होता है। अतएव तांड्य ब्राह्मण में कहा है – वीर्यं वै गायत्री (तां० ७.३.१३)।

गायत्री मंत्र के तीन भाग हैं—(क) महाव्याहृति—ओं भूर्भुवः स्वः। इसमें परमात्मा के स्वरूप का वर्णन है कि वह सत्, चित् और आनन्दरूप है। उसके आनन्द की प्राप्ति ही मनुष्य-जीवन का लक्ष्य है। (ख) तत्..........धीमहि। उस आनन्द की प्राप्ति के लिए परमात्मा के तेज या ज्योति को हृदय में धारण करना होगा। परमात्मारूपी दिव्य रत्न को हृदय में रखे बिना ज्ञान की शक्ति ही उद्‌बुद्ध नहीं होगी। बुद्धि की शुद्धि के लिए आस्तिकता, ईश्वर-विश्वास और ईश्वर की सर्वव्यापकता का ज्ञान चाहिए। मंत्र का द्वितीय भाग आस्तिकता और आत्मिक शक्ति को उत्पन्न करता है। (ग) मंत्र का तृतीय भाग—धियो..........

प्रचोदयात्, गायत्री-मंत्र के जप का फल बताता है। ईश्वररूपी मणि को हृदय में धारण करने से उसका प्रकाश बुद्धि को शुद्ध करता है। बुद्धि स्वयं सन्मार्ग पर चलने लगती है। वह अकर्तव्य का परित्याग करके कर्तव्य मार्ग को ही ग्रहण करती है। इस प्रकार मनुष्य का जीवन सुख की ओर अग्रसर होता है।

टिप्पणी—(१) **ओम्**—अवतीति ओम्, रक्षा करने वाला। रक्षा अर्थ वाली अव् धातु से मनिन् (मन्) प्रत्यय, अवतेष्टिलोपश्च (उणादि० १.१४२) से मन् के अन् का लोप, ज्वरत्वर० (पा० ६.४.२०) से अव् को ऊठ् (ऊ), गुण। अव्+मन् (म्)=ओम्। (२) **भूर्भुवः स्वः**—भूः, भुवः, स्वः, ये तीन ईश्वर के गुण-बोधक महाव्याहृतियाँ हैं। भूः—सत्, सत्ता; भुवः—चित्, ज्ञान, चेतना; स्वः—आनन्द, इस तीन गुणों से युक्त परमात्मा सच्चिदानन्द है। (३) **सवितुः**—सू (जन्म देना, प्रेरणा देना)+तृच् (तृ)=सवितृ+षष्ठी १। (४) **वरेण्यम्**—वरणीय,सर्वश्रेष्ठ, अत्युत्तम, सर्वोत्कृष्ट। वृ+एन्य। (५) **भर्गः**—तेज। भृज्+घञ् (अ)। भृजी भर्जने, पापों को नष्ट करता है। यहाँ भर्गस् नपुंसक लिंग शब्द है। भर्ग का अर्थ वीर्य है। 'वीर्यं वै भर्गः' (शतपथ ब्रा० ५.४.५.१)। (६) **धीमहि**—धारण करते हैं। धा+लुङ् आत्मनेपद+उ० पु० ३। अडागमरहित लुङ्, Injunctive, है। अधिकांश भाष्यकारों ने धीमहि का अनुवाद—ध्यायामः, चिन्तयामः, ध्यान करते हैं, किया है। 'ध्यै चिन्तायाम्' धातु में छान्दस संप्रसारण माना है। धा धातु का रूप मानना अधिक उचित है। (७) **प्रचोदयात्**—प्र+चुद्+णिच्+लेट् प्र० पु० १। चुरादिगणी 'चुद् संचोदने' से। प्रेरित करे। विधिलिङ् में प्रचोदयेत् होगा। (८) छन्द की पूर्ति के लिए वरेण्यम् को 'वरेणिअम्' पढ़ा जाता है।

२. मन की गति अज्ञेय

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं,
तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।　　यजु० ३४.१

अन्वय—यत् दैवं (मनः) जाग्रतः दूरम् उद् ऐति, तद् उ सुप्तस्य तथा एव ऐति । दूरंगमं ज्योतिषाम् एकं ज्योतिः, तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु ।

शब्दार्थ—(यत्) जो, (दैवम्) दिव्य, आत्मबोध का साधन, (मनः) मन, (जाग्रतः) जागते हुए का, (दूरम्) दूर, (उद् ऐति) जाता है। (तद् उ) और वह, (सुप्तस्य) सोते हुए व्यक्ति का, (तथा एव) उसी प्रकार, (ऐति) जाता है। (दूरंगमम्) दूर तक जाने वाला, तीनों कालों में गति वाला, (ज्योतिषाम्) प्रकाशों का, (एकं ज्योतिः) एकमात्र प्रकाशक, (तत् मे मनः) वह मेरा मन, (शिवसंकल्पम्) शुभ विचारों वाला, (अस्तु) होवे।

हिन्दी अर्थ—जो दिव्य मन जागते हुए मनुष्य का दूर तक जाता है और जो सोते हुए मनुष्य का उसी प्रकार (दूर तक) जाता है। दूर तक जाने वाला, प्रकाशों का प्रकाश, वह मेरा मन शुभ विचारों वाला होवे।

Eng. Tr.—That celestial entity (i. e. mind), which goes far when a person is awake and wanders similarly even while he is asleep. It wanders far and wide and is the light of lights. May that mind of mine be possessed of noble thoughts.

अनुशीलन—इस मंत्र में मन के दो गुणों का उल्लेख किया गया है। ये हैं— १. मन जाग्रत् और स्वप्न दोनों अवस्थाओं में दूरगामी है। २. मन ज्योतियों का भी ज्योति है।

मन की गति की कोई सीमा नहीं है। मन क्षण मात्र में समस्त विश्व का भ्रमण कर सकता है। जागृत अवस्था में यह दूर-दूर तक भ्रमण करता है, देश और विदेश की यात्रा करता है, सूर्य और चन्द्रलोक तक घूम आता है। यही स्थिति स्वप्न अवस्था में भी है। ज्ञात-अज्ञात, दृष्ट-अदृष्ट, अनुभूत-अननुभूत सभी प्रकार के पदार्थ स्वप्न में दिखाई पड़ते हैं और उनके द्वारा सुख या दुःख की अनुभूति होती है। अतएव मन को दैवम् अर्थात् दिव्य कहा गया है।

मन संसार की सर्वोत्तम ज्योति है, अतएव इसे ज्योतियों की ज्योति या प्रकाशों का प्रकाश कहा गया है। मनुष्य की दृष्टि जहां तक नहीं जा सकती है, उन सभी तत्त्वों का बोध मन कराता है। मन प्रकाशों का प्रकाशक इसलिए है कि वही पांचों ज्ञानेन्द्रियों को ज्ञान और प्रकाश देता है। वही इनका संचालक है। संसार का सबसे सूक्ष्म तत्त्व आत्मा है। उस आत्मतत्त्व का मन ही साक्षात्कार कर पाता है। अतः योगी मन को वश में करके आत्मज्ञान प्राप्त करते हैं। मन के प्रकाशों का प्रकाशक होने के कारण गोपथ ब्राह्मण में उसे ब्रह्म कहा गया है।

मनो ब्रह्म। गोपथ ब्रा० १.२.११

टिप्पणी—(१) **जाग्रतः**—जागते हुए का। जागृ (जागना) +शतृ+ ष० १। (२) **उद् ऐति**—जाता है। उद्+आ+इ (जाना, अदादि)+लट् प्र० १। (३) **दैवम्**—दिव्य, देव परमात्मा तक पहुँचाने वाला। देव+अ। (४) **शिवसंकल्पम्**-शिव-शुभ, अच्छा, संकल्पम्-विचार वाला। (५) **अस्तु**-होवे। अस् (होना, अदादि)+लोट् प्र० १।

३. मन ही मानव का प्रेरक

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो
यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

यजु० ३४.२

अन्वय—येन अपसः धीराः मनीषिणः यज्ञे विदथेषु कर्माणि कृण्वन्ति। यत् अपूर्वं यक्षं प्रजानाम् अन्तः। तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

शब्दार्थ—(येन) जिससे, जिस मन से, (अपसः) कर्मठ, कर्मनिष्ठ, (धीराः) धीर, धैर्यसम्पन्न, (मनीषिणः) विद्वान्, (यज्ञे) यज्ञ में,

(विदथेषु) शास्त्रार्थों में, ज्ञानचर्चाओं में, (कर्माणि) कर्मों को, (कृण्वन्ति) करते हैं। (यत्) जो, (अपूर्वम्) अपूर्व, अनुपम, (यक्षम्) पूज्य, पवित्र, (प्रजानाम्) प्राणिमात्र के, (अन्तः) अन्दर है। (तत् मे मनः) वह मेरा मन, (शिवसंकल्पम्) पवित्र विचारों वाला, (अस्तु) होवे।

हिन्दी अर्थ—जिस मन से कर्मठ और धीर विद्वान् लोग यज्ञ तथा शास्त्रार्थों में कर्मों को करते हैं। जो अपूर्व और पूज्य मन प्राणिमात्र के अन्दर है। वह मेरा मन शुभ विचारों वाला होवे।

Eng. Tr.—That mind through whose agency active and patient wise men perform their actions in the sacrifices and at the exposition of knowledge. That which is unique, holy and seated in the inmost recess of all creatures. May that mind of mine be possessed of noble thoughts.

अनुशीलन—इस मंत्र में मन को समस्त प्रेरणाओं (Motivations, Motives) का संचालक एवं नियन्ता बताया गया है। साथ ही उसे अपूर्व एवं पूजनीय बताया है।

मनुष्य जीवन में आनन्द और यश की प्राप्ति करना चाहता है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वह यज्ञ करता है और ज्ञान-चर्चाओं में भाग लेता है। इन आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए प्रेरणा देने वाला मन है। मन आकांक्षाओं का पूरक है। मन ही श्रेय और प्रेय का मार्ग प्रशस्त करता है, अतः उसे यजुर्वेद और शतपथ ब्राह्मण में दिव्य सुखवर्षक या 'पाथ्य वृषा' कहा गया है।

मनो वै पाथ्यो वृषा। (यजु० ११.३४) शत० ब्रा० ६.४.२.४

मन को अपूर्व अर्थात् अद्वितीय, हृदय में निवास करने वाला तथा यक्ष अर्थात् पूज्य कहा है। मन की किसी से उपमा नहीं दी जा सकती है, अतः वह अपूर्व, अनुपम और अद्वितीय है। ऐतरेय ब्राह्मण और कौषीतकि ब्राह्मण में मन को परमात्मा का अपूर्व शरीर कहा गया है।

अपूर्वा (प्रजापतेस्तनूः) तन्मनः । ऐत. ५.२५, कौषी. २७.५

मन मनुष्य के अन्दर रहने वाली परम पूज्य ज्योति है। यही मनुष्य को प्रकाश देता है और मार्ग दिखाता है। अतएव शतपथ और तैत्तिरीय ब्राह्मण में मन का स्थान हृदय बताया गया है।

मनो हृदये (श्रितम्) । तैत्ति० ३.१०.८.६

कस्मिन् नु मनः प्रतिष्ठितं भवतीति हृदय इति । शत० १४.६.९.२५

टिप्पणी—(१) **अपसः**—कर्मठ, कर्मशील। अपस् + प्र० ३। अपस्—कर्म। यहाँ कर्म करने वाले अर्थ है। (२) **कृण्वन्ति**—करते हैं। कृ (करना, स्वादि) + लट् प्र० ३। (३) **विदथेषु**—शास्त्रार्थों में, ज्ञानचर्चाओं में। (४) **यक्षम्**—यजनीय, पूज्य, पवित्र। (५) **प्रजानाम्**—प्रजाओं के। यहाँ उत्पन्न होने वाले जीवमात्र अर्थ है।

४. मन अमर ज्योति है

यत् प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च
यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किं चन कर्म क्रियते
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

यजु० ३४.३

अन्वय—यत् प्रज्ञानम् उत चेतः धृतिः च, यत् प्रजासु अन्तः अमृतं ज्योतिः। यस्मात् ऋते किं चन कर्म न क्रियते, तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

शब्दार्थ—(यत्) जो मन, (प्रज्ञानम्) ज्ञान, ज्ञान का साधन, (उत) और, (चेतः) चित्त, स्मृति का साधन, (धृतिः च) और धैर्य, धारणा का साधन है। (यत्) जो, (प्रजासु अन्तः) प्राणिमात्र के अन्दर, (अमृतम्) अमर, (ज्योतिः) प्रकाश है। (यस्मात् ऋते) जिसके बिना, (किं चन)

कुछ भी, (कर्म) कार्य, (न) नहीं, (क्रियते) किया जाता है, (तत् मे मनः) वह मेरा मन, (शिवसंकल्पम् अस्तु) शुभ विचारों वाला होवे।

हिन्दी अर्थ—जो मन ज्ञान, स्मृति और धारणा शक्ति का साधन है, जो प्राणिमात्र के अन्दर अमर ज्योति है, जिसके बिना कोई काम नहीं किया जा सकता है, वह मेरा मन शुभ विचारों वाला होवे।

Eng. Tr.—That mind, which is endowed with faculties of cognition, recollection and retention and is the immortal light placed within the self of all creatures and without whose agency no task can be accomplished; May that mind of mine be possessed of noble thoughts.

अनुशीलन—इस मंत्र में मन के तीन महत्त्वपूर्ण गुणों का वर्णन किया गया है। ये हैं—१. प्रज्ञान या जानना (Cognition), २. चित्त या स्मरणशक्ति (Recollection), ३. धृति या धारणा शक्ति (Retention)।

मन के द्वारा समस्त ज्ञान प्राप्त किया जाता है, अतः इसे प्रज्ञान या ज्ञानरूप कहा गया है। मन का दूसरा कार्य है, ज्ञात वस्तुओं की स्मृति या स्मरण शक्ति। मन एक कोषागार है, जिसमें सभी पूर्वानुभूत तथ्य संगृहीत रहते हैं और इन्हें यथासमय स्मरण किया जाता है। इस धारणाशक्ति को धृति शब्द के द्वारा कहा गया है। यह धारणाशक्ति मनुष्य में मेधा के रूप में होती है, अतः धारणाशक्ति-युक्त विद्वान् को मेधावी कहते हैं।

मन को अमर ज्योति कहा गया है। यह ज्योति ही जीवन भर मनुष्य को प्रकाश देती है। यह मनुष्य के लिए प्रकाश-स्तम्भ है। इसकी अन्य विशेषता बताई गई है कि इसके बिना कोई काम नहीं होता है। अतएव शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि मन के बिना कोई काम नहीं किया जा सकता है। मन से ही देखा और सुना जाता है, अन्यथा नहीं।

न ह्ययुक्तेन मनसा किंचन संप्रति शक्नोति कर्तुम् । शत० ६.३.१.१४
मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति । शत० १४.४.३.८

टिप्पणी—(१) **प्रज्ञानम्**—ज्ञान का साधन। (२) **चेतः**—चित्त, जो स्मृति का कार्य करता है। (३) **धृतिः**—धारक, जो ज्ञान को स्थिर रखता है। (४) **अमृतम्**—अमर, अनश्वर। (५) **क्रियते**—किया जाता है। कृ (करना)+कर्मवाच्य में लट् प्र० १।

५. मन त्रिकाल का अधिष्ठाता है

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्
परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

यजु० ३४.४

अन्वय—येन अमृतेन इदं भूतं भुवनं भविष्यत् सर्वं परिगृहीतम्, येन सप्तहोता यज्ञः तायते, तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

शब्दार्थ—(येन) जिस, (अमृतेन) अमर मन के द्वारा, (इदम्) यह, (भूतम्) भूतकाल, (भुवनम्) वर्तमान काल, (भविष्यत्) भविष्यत् काल, (सर्वम्) सभी, (परिगृहीतम्) पकड़ा हुआ है। (येन) जिसके द्वारा, (सप्तहोता) सात होताओं वाला, (यज्ञः) यज्ञ, (तायते) फैलाया जाता है, किया जाता है। (तत् मे मनः) वह मेरा मन, (शिवसंकल्पम् अस्तु) पवित्र विचारों वाला होवे।

हिन्दी अनुवाद—जिस अमर मन ने ये तीनों काल-भूत, वर्तमान और भविष्यत्—अपने वश में किए हुए हैं, जिसके द्वारा सात होताओं (यज्ञकर्ता) वाला यज्ञ किया जाता है, वह मेरा मन शुभ विचारों वाला होवे।

Eng. Tr.—That immortal substance by which everything in this world past, present and future is comprehended and under whose authority the seven Hotas (sacrificers) perform their sacrifice : May that mind of mine be possessed of noble thoughts.

अनुशीलन—इस मंत्र में बताया गया है कि मन अमर ज्योति है। यह वर्तमान भूत और भविष्य तीनों कालों का अधिष्ठाता है। यह सात होताओं के द्वारा सृष्टि-चक्ररूपी यज्ञ कर रहा है।

मन के ग्रहणक्षेत्र में वर्तमान भूत और भविष्य तीनों काल हैं। मन के द्वारा ही तीनों कालों का ज्ञान होता है। अतएव योगी एवं तत्त्वज्ञानी-जन मन को वश में करके त्रिकाल का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

मन सृष्टि-चक्ररूपी यज्ञ का प्रवर्तक है। मानव शरीर में भी सात होता हैं, ये शरीर की सभी क्रियाओं का संचालन करते हैं। ये सात होता हैं—५ ज्ञानेन्द्रियां, मन और बुद्धि। ये प्रेरणा के स्रोत हैं। ये नियन्त्रण, प्रवर्तन और शक्ति के आधार हैं। इनके द्वारा सभी क्रियाकलाप संचालित होते हैं। अतएव बृहदारण्यक उपनिषद् में मन को यज्ञ का ब्रह्मा कहा गया है। मन ही सारी कामनाओं का आश्रय है। मन से ही सारे विचार किए जाते हैं। इसलिए मन को सम्राट् और परम ब्रह्म कहा गया है।

मनो वै यज्ञस्य ब्रह्मा। बृहदा. उप. ३.१.६
मनसा हि कामान् कामयते। बृहदा. उप. ३.२.७
मनो वै सम्राट् परमं ब्रह्म। बृहदा. उप. ४.१.६

टिप्पणी—(१) **भुवनम्**—वर्तमान काल। (२) **परिगृहीतम्**—पकड़ा है, वश में किया है। परि+ग्रह् (पकड़ना)+क्त (त)। (३) **तायते**—फैलाया जाता है। तन् (फैलाना, तनादि)+कर्मवाच्य लट् प्र० १। न् को आ। (५) **सप्तहोता**—सात होताओं वाला। अग्निष्टोम में सात यज्ञकर्ता होते हैं। मानवशरीर में सात होता हैं—५ ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि।

६. मन ज्ञान का अधिष्ठाता है

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन्
प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिंश्चित्तꣳसर्वमोतं प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

यजु० ३४.५

अन्वय—यस्मिन् ऋचः साम, यस्मिन् यजूंषि, रथनाभौ अराः इव प्रतिष्ठिताः, यस्मिन् प्रजानां सर्वं चित्तम् ओतम्, तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु ।

शब्दार्थ—(यस्मिन्) जिस मन में, (ऋचः) ऋचाएं, ऋग्वेद, (साम) सामन्, सामवेद, (यस्मिन्) जिसमें, (यजूंषि) यजुष्, यजुर्वेद, (रथनाभौ) रथ की नाभि में, (अरा इव) अरों या डंडों की भांति, (प्रतिष्ठिताः) प्रतिष्ठित हैं, जुड़े हुए हैं, (यस्मिन्) जिसमें, (प्रजानाम्), जीवमात्र का, (सर्वम्) सारा, (चित्तम्) चित्त, ज्ञान, चेतना, (ओतम्) ओत-प्रोत है, बुना हुआ है, (तत् मे मनः) वह मेरा मन, (शिवसंकल्पम् अस्तु) शुभ विचारों वाला होवे ।

हिन्दी अर्थ—जिस मन में ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद, रथ की नाभि में अरों के तुल्य, जुड़े हुए हैं, जिसमें जीवमात्र का सारा ज्ञान ओत-प्रोत है, वह मेरा मन शुभ विचारों वाला होवे ।

Eng. Tr.—Wherein the Rigveda, the Samaveda and yajurveda are placed together like the spokes in the navel of the chariot-wheel and wherein the cognition faculty of all creatures is interwoven : May that mind of mine be possessed of noble thoughts.

अनुशीलन—इस मंत्र में मन की दो विशेषताओं का उल्लेख है। ये हैं—१. मन सभी वेदों का आश्रय है। २. मन सारी चेतनाओं का आश्रय है।

मन विश्व के समस्त ज्ञान का आश्रय है। ज्ञान के प्रतीक के रूप में मंत्र में ऋग् यजुः और साम वेदों का उल्लेख है। इस प्रकार मन समस्त ज्ञान (Knowledge) और बुद्धि (Intelligence) का आश्रय स्थान है। ज्ञान का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है, जहाँ मन की पूर्ण गति न हो। मन ज्ञान और विज्ञान का निर्देशक है।

मंत्र में दूसरी बात कही गई है कि विश्व की समस्त चेतना (Consciousness) का आश्रय मन है। मन की प्रेरणा से ही चेतना उद्बुद्ध होती है और गतिशील होती है। चेतना ही मानव में जीवनी शक्ति है। यही मनुष्य को प्रबुद्ध रखती है। अतएव शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि मन अंशु या किरण है, जो ज्योति प्रदान करती है।

मनो ह वा अंशुः। शत० ११-५-९-२

टिप्पणी—(१) **प्रतिष्ठिताः**—प्रतिष्ठित हैं, जुड़े हुए हैं। प्रति + स्था + क्त (त) + प्र० ३। आ को इ। (२) **ओतम्**—लगा हुआ, बुना हुआ। आ + वे (बुनना, भ्वादि) + क्त = आ + उतम् = ओतम्।

७. मन ही मानव का नियन्ता है

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्
नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

यजु० ३४.६

अन्वय—यत् मनुष्यान् सुषारथिः अश्वान् इव नेनीयते, अभीशुभिः वाजिनः इव (यमयति), यत् हृत्प्रतिष्ठम् अजिरं जविष्ठम्, तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

शब्दार्थ—(यत्) जो मन, (मनुष्यान्) मनुष्यों को, (सुषारथिः) उत्तम सारथि, (अश्वान् इव) जैसे घोड़ों को, (नेनीयते) बार बार ले जाता है, (अभीशुभिः) लगामों से, (वाजिनः इव यमयति) जैसे घोड़ों को नियन्त्रित करता है, (यत्) जो, (हृत्प्रतिष्ठम्) हृदय में रहता है, (अजिरम्) फुर्तीला है, जरा रहित है, (जविष्ठम्) अतिवेगशाली है, (तत् मे मनः) वह मेरा मन, (शिवसंकल्पम् अस्तु) शुभ विचारों वाला होवे।

हिन्दी अनुवाद—जो मन मनुष्यों को चलाता है, जैसे उत्तम सारथि घोड़ों को, (उत्तम सारथि, जैसे लगाम से घोड़ों को उसी प्रकार जो मनुष्यों को नियन्त्रित करता है), जो हृदय में रहता है, अत्यन्त फुर्तीला है और अतिवेग-शाली है, वह मेरा मन शुभ विचारों वाला होवे।

Eng. Tr.—The mind controls mankind like the skilful charioteer driving horses with the reins (by ever keeping them under his sway); it is seated in the heart, it is agile and quickest. May that mind of mine be possessed of noble thoughts.

अनुशीलन—इस मंत्र में मन की कतिपय विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। ये हैं—१. मन योग्य सारथि है, २. मन हृदय में प्रतिष्ठित है, ३. मन अत्यन्त फुर्तीला है, ४. मन तीव्रतम गति वाला है।

मन मानव-शरीर का संचालक है। वह एक योग्य सारथि की तरह शरीर-रूपी रथ को वह चलाता है। यही भाव कठ उपनिषद् में दिया गया है कि आत्मा रथी या रथ का स्वामी है, शरीर रथ है, बुद्धि सारथि है और मन लगाम है।

आत्मानं रथिनं विद्धि, शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि, मनः प्रग्रहमेव च॥ कठ. १. ३. ३

मन हृदय में प्रतिष्ठित है। यह हृदय में निवास करते हुए मनुष्य को प्रेरणा देता है। यह अत्यन्त शक्तिशाली और फुर्तीला है। मन की शक्ति को अक्षय कहा गया है। इसकी गति सबसे अधिक है, अतः इसे जविष्ठ कहा गया है। यही बात शतपथ और तैत्तिरीय ब्राह्मण में कही गई है।

मनो हृदये (श्रितम्)। तैत्ति० ३-१०-८-६
न मनसः किंचनाशीयोऽस्ति। शत० ५-१-४-८

टिप्पणी—(१) **नेनीयते**—बार-बार ले जाता है। नी (ले जाना, भ्वादि) + बार बार अर्थ में यङ् (य) = नेनीय + लट् प्र० १। (२) **हृत्प्रतिष्ठम्**—हृदय में रहने वाला। (३) **अजिरम्**—चुस्त, फुर्तीला, बहुत चंचल। अज् + इर। कुछ विद्वानों ने इसका अजर अर्थात् बुढ़ापे से रहित अर्थ किया है। (४) **जविष्ठम्**—सर्वोत्तम वेग वाला। जव + इष्ठन् (इष्ठ)।

८. मन अविनश्वर है

यद् देवा देवान् हविषायजन्त-
अमर्त्यान् मनसाऽमर्त्येन।
मदेम तत्र परमे व्योमन्
पश्येम तदुदितौ सूर्यस्य॥

अथर्व० ७. ५. ३

अन्वय—यत् देवाः अमर्त्यान् देवान् अमर्त्येन मनसा हविषा अयजन्त। तत्र परमे व्योमन् मदेम। सूर्यस्य उदितौ तत् पश्येम।

शब्दार्थ—(यत्) जो कि, जिस फल के लिए, (देवाः) देवों ने, विद्वानों ने, (अमर्त्यान्) अमर, (देवान्) देवों को, (अमर्त्येन) अविनश्वर, अमर, (मनसा) मनरूपी, (हविषा) हवि से, (अयजन्त) यज्ञ किया। (तत्र) उस, (परमे व्योमन्) परम आकाश में, (मदेम) हम सब

आनन्दित हों। (सूर्यस्य) सूर्य के, (उदितौ) उदय होने पर, (तत्) उस फल को, उस प्रकाश को, (पश्येम) देखें, प्राप्त करें।

हिन्दी अर्थ—जिस उद्देश्य से विद्वानों ने अमर देवों के लिए अमर मनरूपी हवि से यज्ञ किया, उसके फलस्वरूप हम उस परम आकाश में आनन्दित हों और सूर्य के उदय होने पर उस फल को देखें (अर्थात् पावें)।

Eng. Tr.—With what purpose the wise men performed the sacrifice for the celestial deities with the immortal mind as the oblation, may we, as a result of that, rejoice in that lofty heaven and receive its sweet fruit at the time of sun-rise.

अनुशीलन— इस मन्त्र में मन को अमर्त्य अर्थात् अमर या अविनश्वर कहा गया है। देवों की प्राप्ति का साधन मन है। दोनों अमर हैं, अतः अमर को अमर से प्राप्त किया जा सकता है।

मन की शक्ति कभी क्षीण नहीं होती, अतः उसे अमर कहा गया है। शतपथ और कौषीतकि ब्राह्मणों में मन को अपरिमित शक्ति वाला बताया गया है। उसकी इयत्ता नहीं बताई जा सकती है। वह अनन्त है। इस अनन्तता और अमरता के कारण गोपथ ब्राह्मण में मन को देव या देवता कहा गया है।

अपरिमिततरमिव हि मनः। शत० १-४-४-७
मनो वा एतद् यदपरिमितम्। कौषी० २६-३
मनो देवः। गोपथ० १-२-११

कठोपनिषद् में कहा गया है कि परमात्मा को मन से ही प्राप्त किया जा सकता है, अन्य साधनों से नहीं।

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन। कठ० २-१-११

टिप्पणी—(१) देवाः—देवता, विद्वान्। विद्वानों को देव कहते हैं। विद्वांसो हि देवाः (शतपथ ब्रा० ३-७-३-१०)। **(२) अयजन्त**—यज्ञ किया। यज् (यज्ञ करना, भ्वादि)+लङ् प्र० ३। **(३) अमर्त्येन०**—मन अमर है, अजर

हैं। (४) **मदेम**—आनन्दित हों। मद् (प्रसन्न होना, भ्वादि) + विधिलिङ् उ० ३। (५) **व्योमन्**—आकाश में। सप्तमी एक० है। इ का लोप। (६) **पश्येम**—देखें। दृश् (पश्य्, देखना + विधिलिङ् उ० ३)। (७) **उदितौ**—उद् + इ + क्तिन्—उदिति + स० १।

९. मन दैवी शक्ति है

अवः परेण पितरं यो अस्य वेद-
अवः परेण पर एनावरेण।
कवीयमानः क इह प्र वोचद्
देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥

अथर्व० ९-९-१८; ऋग्० १-१६४-१८

अन्वय—परेण अवः अस्य पितरं यः वेद, परेण अवः, एना अवरेण परः, कवीयमानः कः इह प्र वोचत्, देवं मनः कुतः अधि प्रजातम्।

शब्दार्थ—(परेण अवः) ऊपर से नीचे तक फैले, (अस्य) इसके, इस मनके, (पितरम्) पिता को, (यः) जो, (वेद) जानता है। (परेण अवः) जो दूर है। (कवीयमानः) कवितुल्य क्रान्तदर्शी, (कः) कौन, (इह) यहाँ, (प्र वोचत्) बताता है, बता सकता है, (देवं मनः) दैवी शक्ति वाला मन, (कुतः) कहाँ से, (अधि प्रजातम्) उत्पन्न हुआ है।

हिन्दी अर्थ—ऊपर से नीचे तक, दूर से पास तक और पास से दूर तक फैले हुए इस मन के पिता को कौन जानता है? कवि के तुल्य क्रान्तदर्शी कौन यह बता सकता है कि दैवी शक्ति से युक्त यह मन कहाँ से उत्पन्न हुआ है?

Eng. Tr.—Who knows the father of the mind, which is spread from the heaven to the earth, from here to the distant places and vice-versa? Who, an omniscient person, can tell whence this divine mind was born?

अनुशीलन—इस मंत्र में वर्णन किया गया है कि मन दिव्य शक्ति है। यह नीचे, ऊपर, इधर, उधर, सब ओर फैला हुआ है।

मन की इस अनन्त शक्ति का उद्गम स्थान कहाँ है? कौन इसका पिता है? कौन इसका संचालक है? ये प्रश्न इस मन्त्र में उठाए गए हैं। मन्त्र में कहा गया है कि क्रान्तदर्शी विद्वान् ही इस प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं।

मन अनन्त शक्ति और दिव्य गुणों से युक्त है, अतः इसे ब्रह्म और सम्राट् कहा गया है। आत्मशक्ति की सभी विशेषताएँ इसमें विद्यमान हैं। यह ज्योतिर्मय है, प्रकाशों का प्रकाशक है, सुसूक्ष्म है और जविष्ठ है। इन गुणों का उल्लेख ब्राह्मण ग्रन्थों में भी है।

अनन्तं वै मनः। शत. १४. ६. १. ११
मनो देवः। गोपथ. १. २. ११
मनो वै सम्राट्, परमं ब्रह्म। शत० १४. ६. १०. १५

अथर्ववेद (९.९) में मन का पिता आत्मा बताया गया है। उसी की विभूति मन है। उसकी महिमा से मन को अनन्त शक्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

टिप्पणी—(१) **परेण अवः**—ऊपर से नीचे, दूर से पास। (२) **वेद**—जानता है। विद् (जानना, अदादि)+लट् प्र० १। (३) **कवीयमानः**—कवि के सदृश आचरण करने वाला। कवि+क्यङ् (य)+शानच् (आन)। (४) **बोचत्**—बताता है। ब्रू (वच्, कहना)+लुङ् प्र० १। अडागम नहीं, Inj. है। (५) **प्रजातम्**—उत्पन्न हुआ। प्र+जन्+क्त। न् को आ।

१०. मन शक्ति का स्रोत

वातो वा मनो वा, गन्धर्वाः सप्तविꣳशतिः।
ते अग्रे अश्वमयुञ्जन्, ते अस्मिन् जवमादधुः॥

यजु० ९.७

अन्वय—वातः वा, मनः वा, सप्तविंशतिः गन्धर्वाः, ते अग्रे अश्वम् अयुञ्जन्, ते अस्मिन् जवम् आदधुः ।

शब्दार्थ—(वातः वा) वायु, (मनः वा) मन, (सप्तविंशतिः) २७, (गन्धर्वाः) गन्धर्व, पृथ्वी के धारक तत्त्व, (ते) उन्होंने, (अग्रे) पहले, (अश्वम्) घोड़े को, अश्वतुल्य मनुष्य को, (अयुञ्जन्) लगाया, जोता, कार्य में प्रवृत्त किया । (ते) उन्होंने, (अस्मिन्) इसमें, (जवम्) वेग, (आदधुः) रखा ।

हिन्दी अर्थ—वायु, मन और २७ गन्धर्वों ने सर्व-प्रथम अश्व (मनुष्य, यजमान) को जोता और इसमें वेग रखा ।

Eng. Tr.—The wind, mind and twentyseven Gandharvas yoked the horse (i.e. the man) first and put the swiftness in him.

अनुशीलन—इस मंत्र में वर्णन किया गया है कि मानव-शरीर-रूपी अश्व में वायु, मन और २७ गन्धर्वों ने शक्ति रखी है, उससे ही यह गतिशील है ।

शक्ति के स्रोत तत्त्वों को मंत्र में गन्धर्व कहा गया है । सृष्टि-क्रम में २७ गन्धर्व हैं—१२ आदित्य या सूर्य, ८ वसु (५ महाभूत, सूर्य, चन्द्र और होता), ५ प्राण, बुद्धि और मन । मानवशरीर में २७ गन्धर्व हैं—५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, ५ तन्मात्रा, ५ महाभूत, ५ प्राण, बुद्धि और मन । ये सभी मिलकर शरीररूपी घोड़े को चलाते हैं और इसमें शक्ति का संचार करते हैं ।

इसमें ५ प्राणों को वातः (वायु) के द्वारा लिया गया है और उसके साथ मन को रखा गया है । वायु में गति है और मन में गति है । संसार में गतिशीलों में इन दोनों की सर्वप्रथम गणना है । इनकी शक्ति से यह शरीर चलता है । इसी बात को शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट किया गया है कि वायु और मन से अधिक तीव्र गति वाला कोई नहीं है, अतः मंत्र में वायु और मन का उल्लेख है ।

न वै वातात् किंचन आशीयोऽस्ति, न मनसः किंचन आशीयोऽस्ति, तस्मादाह वातो वा मनो वेति । शत० ५, १.४.८

टिप्पणी—(१) **गन्धर्वाः**—गन्धर्व, पृथिवी के धारक तत्त्व। (२) **सप्तविंशतिः**—२७ गन्धर्व। २७ गन्धर्व हैं—१२ आदित्य,८ वसु, ५ प्राण, बुद्धि और मन। कुछ विद्वानों ने २७ गन्धर्व से २७ नक्षत्र अर्थ लिया है। (३) **अयुञ्जन्**—लगाया। युज् (लगाना, रुधादि) + लङ् प्र० ३, (४) **आदधुः**—रखा। आ + धा (रखना, जुहोत्यादि) + लङ् प्र० ३।

११. मन की गति अतितीव्र

यथा मनो मनस्केतैः, परापतत्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्र पत, मनसोऽनु प्रवाय्यम्॥

अथर्व० ६.१०५.१

अन्वय—यथा मनः मनस्केतैः आशुमत् परापतति। एव कासे ! त्वं मनसः प्रवाय्यम् अनु प्र पत।

शब्दार्थ—(यथा) जिस प्रकार, (मनः) मन, (मनस्केतैः) मानसिक विचारों के साथ, (आशुमत्) बहुत शीघ्रता से, (परापतति) दूर तक जाता है। (एव) इसी प्रकार, (हे कासे) हे खांसी, (त्वम्) तू, (मनसः) मन की, (प्रवाय्यम् अनु) उड़ान के सदृश, (प्र पत) दूर जा।

हिन्दी अर्थ—**जिस प्रकार मन विचारों के साथ शीघ्रता से बहुत दूर जाता है, उसी प्रकार हे खांसी ! तू मन की उड़ान के तुल्य दूर उड़ जा।**

Eng. Tr.—**As the mind, along with thoughts, runs away speedily, similarly O Cough disease! get away with the speed of mind.**

अनुशीलन—इस मंत्र में कास या खाँसी के प्रसंग में मन के गुणों का उल्लेख है। मन विचारों के साथ उड़ता है। मन की उड़ान अवर्णनीय है।

विचार मन के अग्रदूत हैं। मनरूपी पक्षी विचाररूपी पंखों की सहायता से उड़ता है। इस उड़ान को ही कल्पना कहा जाता है। विचार-जगत् अनन्त

है। जो कुछ भी चिन्तन का विषय है, वह विचार की कोटि में आता है। विचार मानस प्रत्यक्ष है। अतः उसे 'मनस्केत' कहा गया है। मन की गति अतितीव्र है, अतः विचार की भी गति असीम हो जाती है। विश्व का ऐसा कोई पदार्थ या तत्त्व नहीं है जो मन की पहुँच से बाहर हो। मन सुदूर तत्त्वों तक क्षणमात्र में पहुँच जाता है, अतः इसकी उड़ान को अतितीव्र कहा गया है। यही कारण है कि कवि की मानस कल्पना को अनिर्वचनीय और असीम कहा गया है। जहाँ सूर्य की भी पहुँच नहीं है, वहाँ तक कवि की मानस दृष्टि पहुँच जाती है। अतः कहा है—

जहाँ न जाए रवि, वहाँ जाए कवि।

टिप्पणी—(१)**मनस्केतैः**—मन के चिन्तन अर्थात् विचार। (२) **परा-पतति**—दूर जाता है। परा+पत् (गिरना)+लट् प्र० १। (३) **एवा**—उसी तरह। एव को छान्दस दीर्घ। (४) **कासे**—हे खांसी। खांसी के लिए कासा, कासिका शब्द हैं। (५) **प्र पत**—उड़ जाओ। पत्+लोट् म० १। (६) **प्रवाय्यम्**—उड़ान, तीव्र गति।

१२. मन की गति असीम है

यत् ते दिवं यत् पृथिवीं, मनो जगाम दूरकम्।
तत् त आ वर्तयामसि- इह क्षयाय जीवसे॥

ऋग्० १०-५८.२

अन्वय—यत् ते मनः दिवं जगाम, यत् पृथिवीं दूरकम् (जगाम), ते तत् (मनः) इह क्षयाय जीवसे आ वर्तयामसि।

शब्दार्थ—(यत्) जो, (ते) तेरा, (मनः) मन, (दिवम्) द्युलोक में, (जगाम) गया, (यत्) जो तेरा मन, (पृथिवीम्) पृथिवी पर, (दूरकम्) दूर तक, (जगाम) गया, (ते) तेरे, (तत् मनः) उस मन को, (इह) यहाँ, (क्षयाय) निवास के लिए, (जीवसे) सुखद जीवन के लिए, (आ वर्तयामसि) लौटाकर लाते हैं।

हिन्दी अर्थ—हे मनुष्य ! जो तेरा मन द्युलोक में गया और जो तेरा मन पृथिवी पर बहुत दूर तक गया, तेरे उस मन को यहाँ निवास और सुखद जीवन के लिए लौटाकर लाते हैं ।

Eng. Trans.—O Man ! We bring that mind of you back, which has gone to the heaven and the earth, far and wide, for pleasant dwelling and comfortable existence.

अनुशीलन—इस मंत्र में मन की गति को असीम बताया गया है । मन धरती से आसमान तक, लोक से परलोक तक और पृथिवी से पाताल तक जाता है । वह इच्छामात्र से द्युलोक तक और पृथ्वी के छोर तक चला जाता है । पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो इसकी गति से दूर हो ।

मन में दोनों धर्म हैं—गमन और प्रत्यावर्तन । मन यदि दूर से दूर जा सकता है तो उसे क्षण मात्र में अपने स्थान पर लौटा कर निरुद्ध किया जा सकता है । इन्हीं चित्तवृत्तियों के निरोध को योग कहा गया है ।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः । योगदर्शन १. २

मन के इस भ्रमण को एवं इसकी चंचलता को निरुद्ध करके आत्मस्थ करने का संकेत है । यदि मन की चंचलता रोक ली जाती है तो वह आत्मस्थ हो जाता है । इसका फल बताया गया है कि वह एकत्र स्थिर हो जाता है और उससे जीवनी शक्ति प्राप्त होती है । मन स्वयं एक संजीवनी वटी है । वह स्थिर होते ही आत्मिक शक्ति की वृद्धि करता है ।

टिप्पणी—(१) **जगाम**—गया । गम् (जाना, भ्वादि)+ लिट् प्र० १ । (२) **आवर्तयामसि**—लौटाते हैं । आ+वृत् (लौटना, भ्वादि)+णिच्+लट् उ० ३ । मः को मसि । (३) **क्षयाय**—निवास के लिए । क्षय का अर्थ घर है । (४) **जीवसे**—जीवित रहने के लिए । जीव् (जीवित रहना, भ्वादि + तुमर्थ में असे प्रत्यय ।

१३. मन की गति विश्वव्यापी

यत् ते विश्वमिदं जगत्, मनो जगाम दूरकम्।
तत् त आवर्तयामसि—इह क्षयाय जीवसे॥

ऋग्० १०.५८.१०

अन्वय—यत् ते मनः इदं विश्वं जगत् दूरकं जगाम। ते तत् (मनः) इह क्षयाय जीवसे आ वर्तयामसि।

शब्दार्थ—(यत्) जो, (ते) तेरा, (मनः) मन, (इदम्) इस, (विश्वं जगत्) सारे संसार में, (दूरकम्) दूर तक, (जगाम) गया, (ते) तेरे, (तत्) उस मन को, (इह) यहाँ, (क्षयाय) निवास के लिए, (जीवसे) सुखद जीवन के लिए, (आ वर्तयामसि) लौटाकर लाते हैं।

हिन्दी अर्थ--हे मनुष्य ! जो तेरा मन इस सारे संसार में दूर तक गया हुआ है, तेरे उस मन को यहाँ निवास और सुखद जीवन के लिए लौटाकर लाते हैं।

Eng. Tr.—O Man ! We bring that mind of you back, which was wandering far and wide in the universe, for pleasant dwelling and comfortable existense.

अनुशीलन— इस मंत्र में मन को समस्त विश्व में भ्रमण करने वाला बताया गया है। इससे ज्ञात होता हैं कि मन की गति विश्वव्यापी है।

मन की चंचलता उसका एक महत्त्वपूर्ण धर्म है। वह सर्वत्र अस्थिर भाव से घूमता हैं। यह उसका दोष भी है। मन की अस्थिरता उसे एक लक्ष्य में प्रवृत्त नहीं होने देती है। इस अस्थिरता का निराकरण करके उसे अपने स्थान में लाना, यह साधना का एक अंग है। इस साधना के बिना कोई भी किसी विषय में विशेष दक्षता नहीं प्राप्त कर सकता है। अतः मंत्र का कथन है कि मन को इधर-उधर से लौटाकर स्थिरता एवं जीवनी शक्ति के लिए उसे एक स्थान पर स्थिर करते हैं।

टिप्पणी—(१) **जगाम**—गया, घूमा, घूम रहा था। गम् (जाना, भ्वादि) + लिट् प्र० १। (२) **आवर्तयामसि**—लौटाते हैं। आ + वृत् + णिच् + लट् उ० ३। मः को मसि। (३) **जीवसे**—जीवित रहने के लिए। जीव् (जीना, भ्वादि) + तुमर्थ में असे प्रत्यय।

१४. मन की गति बहुमुखी

आ ते मह इन्द्रोत्युग्र
समन्यवो यत् समरन्त सेनाः।
पताति दिद्युन्नर्यस्य बाह्वो-
र्मा ते मनो विष्वद्र्यग् वि चारीत् ॥

ऋग्० ७. २५. १., तै० सं० १. ७. १३. २

अन्वय—हे उग्र इन्द्र ! यत् समन्यवः सेनाः समरन्त, नर्यस्य महः ते बाह्वोः दिद्युत् ऊती आ पताति। ते मनः विष्वद्र्यक् मा वि चारीत्।

शब्दार्थ—(हे उग्र इन्द्र !) हे तेजोमय इन्द्र !, (यत्) जब, (समन्यवः) उत्साहयुक्त, क्रोधयुक्त, (सेनाः) सेनाएँ, (समरन्त) युद्ध करती हैं, (नर्यस्य) जनहितकारी, (महः) महान्, (ते) तेरे, (बाह्वोः) बाहुओं से, (दिद्युत्) तेजोमय वज्र, (ऊती) रक्षा के लिए, (आ पताति) गिरता है, गिरे, (ते मनः) तेरा मन, (विष्वद्र्यक्) चारों ओर, विभिन्न दिशाओं में, (मा) मत, (वि चारीत्) घूमे।

हिन्दी अर्थ—हे तेजस्वी इन्द्र ! जब क्रुद्ध सेनाएँ युद्ध करती हैं, उस समय जनहितैषी महान् तेरी भुजाओं से तेजोमय वज्र हमारी रक्षा के लिए गिरे। तुम्हारा मन इधर-उधर न जावे।

Eng. Tr.—O Mighty Indra ! when the wrathful armies are fighting, let the thunderbolt fall from your mighty hands for our protection. May your mind not divert elsewhere.

अनुशीलन—इस मंत्र में इन्द्र के प्रसंग में मन की बहुमुखी वृत्ति का उल्लेख किया गया है। मन की बहुमुखी वृत्ति कभी लाभप्रद हो सकती है, परन्तु विशेष प्रयोजन या लक्ष्य में एकाग्रता अनिवार्य है।

इसके लिए उदाहरण रूप में युद्ध का प्रसंग दिया गया है। शत्रुसेना आक्रमण कर रही है। ऐसे समय में सुरक्षा के लिए एकाग्रता अनिवार्य है। कितने ही ऐसे प्रसंग होते हैं, जिस समय क्षण भर की अस्थिरता अत्यन्त घातक सिद्ध होती है। अतः मन की एकाग्रता का निर्देश करते हुए कहा गया है कि वह इधर-उधर न जाए।

मानसिक एकाग्रता साधना की सफलता का रहस्य है। किसी प्रकार की भी साधना हो, उसके लिए एकाग्रता और तन्मयता अत्यावश्यक है।

टिप्पणी—(१) **महः**—महान् का। मह्+ष० १। (२) **ऊती**—रक्षा के लिए। ऊति+तृ० १। (३) **समरन्त**—युद्ध करती हैं। सम्+ऋ (युद्ध करना)+लुङ् आ०+प्र० ३। आडागम नहीं, Inj. है। (४) **पताति**—गिरे। पत् (गिरना, भ्वादि)+लेट् प्र० १। (५) **नर्यस्य**—जनहितैषी। नर+य। (६) **विष्वद्र्यक्**-चारों ओर। विषु+अञ्च्+प्र० १। (७) **विचारीत्**—घूमे। चर् (घूमना, भ्वादि)+लुङ् प्र० १। अडागम नहीं, Inj. है।

१५. मन सूक्ष्म तत्त्वों का ज्ञाता

अष्टधा युक्तो वहति वह्निरुग्रः
पिता देवानां जनिता मतीनाम्।
ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः
सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा॥

अथर्व० १३.३.१९

अन्वय—देवानां पिता, मतीनां जनिता, उग्रः वह्निः अष्टधा युक्तः वहति। ऋतस्य तन्तु मनसा मिमानः मातरिश्वा सर्वाः दिशः पवते।

शब्दार्थ—(देवानाम्) देवों का, (पिता) पिता, पालक, (मतीनाम्) बुद्धियों का, (जनिता) जनक, उत्पादक, (उग्रः) तेजोमय, (वह्निः) अग्नि, (अष्टधा) आठ प्रकार से, (युक्तः) लगा हुआ, (वहति) चलता है, संसार को ढोता है । (ऋतस्य) ऋत के, शाश्वत प्राकृतिक नियमों के, (तन्तुम्) धागे को, तत्त्वों को, (मनसा) मन से, (मिमानः) नापता हुआ, जानता हुआ, (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में चलने वाला अग्नि, (सर्वाः) सभी, (दिशः) दिशाओं को, (पवते) पवित्र करता हैं ।

हिन्दी अर्थ—देवों का पालक, बुद्धियों का उत्पादक तेजोमय अग्नि आठ प्रकार से लगा हुआ संसार को ढोता है । प्राकृतिक नियमों के तत्त्वों को मन से परिगणित करते हुए अन्तरिक्ष में व्याप्त अग्नि सभी दिशाओं को पवित्र करता है ।

Eng. Tr.—The mighty fire, protector of the deities and creator of the intellects, yoked in eight ways, carries this universe. The fire, pervading in the atmosphere, calculating the eternal laws by mind, purifies all the directions.

अनुशीलन—इस मंत्र में मन की विशेषता बताते हुए कहा गया है कि वह ऋत के तन्तुओं को मन से नापता है ।

ऋत के तन्तु क्या हैं ? विश्व के धारक शाश्वत नियमों को ऋत कहते हैं । ये नियम सूत्र रूप में सर्वत्र व्याप्त हैं । इन सूत्रों को तन्तु शब्द से कहा गया है । प्रकृति में व्याप्त सूक्ष्म नियम मन के विषय है । मन एक ओर सूक्ष्म तत्त्वों को देखता है और दूसरी ओर उनको तात्त्विक दृष्टि से नापता भी है । इस मानसिक परिगणन को 'मिमानः' शब्द से कहा गया हैं ।

मनुष्य के मस्तिष्क में चिन्तन का कार्य करने वाले तत्त्व सूक्ष्म तन्तु के रूप में विद्यमान हैं । ये ज्ञान-तन्तु वस्तुओं का निरीक्षण, परीक्षण और तात्त्विक आकलन भी करते हैं । इस आकलन के आधार पर ही बुद्धि उस विषय में अपना निर्णय देती है । तदनुसार ही मनुष्य कार्य करता है ।

टिप्पणी—(१) **युक्तः**—लगा हुआ। युज्+क्त। (२) **वहति**—ले जाता है, ढोता है। वह् (ले जाना, भ्वादि)+लट् प्र० १। (३) **मिमानः**—नापता हुआ। मा (नापना, जुहोत्यादि)+शानच् (आन)। (४) **पवते**—पवित्र करता है। पू (पवित्र करना, भ्वादि)+लट् प्र० १। (५) **मातरिश्वा**—मातरि-अन्तरिक्ष में, श्वन्-चलने वाला (रहने वाला) प्र० १।

१६. मन त्रिकालदर्शी

यत् ते भूतं च भव्यं च, मनो जगाम दूरकम्।
तत् त आ वर्तयामसि-इह क्षयाय जीवसे॥

ऋग्० १०.५८.१२

अवन्य—यत् ते मनः भूतं च भव्यं च दूरकं जगाम। ते तत् इह क्षयाय जीवसे आ वर्तयामसि।

शब्दार्थ—(यत्) जो, (ते) तेरा, (मनः) मन, (भूतम्) भूतकाल, (भव्यं च) वर्तमान और भविष्य की ओर, (दूरकम्) दूर तक, (जगाम) गया है, (ते) तेरे. (तत्) उस मन को, (इह) यहाँ, (क्षयाय) रहने के लिए, (जीवसे) जीवन शक्ति के लिए, (आ वर्तयामसि) लौटाते हैं।

हिन्दी अर्थ—हे मनुष्य ! जो तेरा मन भूत, वर्तमान और भविष्यत् की ओर दूर तक गया है, उस तेरे मन को यहाँ निवास और जीवनी शक्ति के लिए लौटाते हैं।

Eng. Tr.—O Human Being ! We bring your mind back, which has gone far away towards present,past and future, for settling here and comfortable existense.

अनुशीलन—इस मंत्र में वर्णन किया गया है कि मन का विषय केवल वर्तमान ही नहीं है। वह भूत, वर्तमान और भविष्य सभी कालों का आकलन करता है, इसलिए मन को त्रिकालदर्शी कहा जाता है।

मन का विषय कल्पना और चिन्तन है। मन भूत का अनुमान करता है। उस समय किन परिस्थितियों में क्या घटनाएँ हुईं, उनका क्या प्रभाव पड़ा, उससे क्या हानि या लाभ हुआ। इन तथ्यों का आकलन करके वह वर्तमान के विषय में अपना मार्ग निकालता है। उसे भविष्य में क्या करना चाहिए, उसके लिए क्या लाभप्रद होगा और किस प्रकार अतीत की हानियों से अपने आपको बचा सकेगा, इत्यादि बातों का निर्णय मन को करना होता है। इस प्रकार मन अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों से सम्बन्ध रखता है। मन व्यक्ति के लिए ही नहीं, अपितु संसार के लिए भी इसी प्रकार त्रिकाल का लेखा-जोखा तैयार करता है।

मंत्र में अन्त में मन की स्थिरता की शिक्षा दी गई है और कहा गया है कि इससे जीवन सुखमय होगा।

टिप्पणी—(१) **भव्यं च**—वर्तमान और भविष्यत्। भव्य के ये दोनों अर्थ हैं। (२) **जगाम**—गया। गम् (जाना, भ्वादि)+लिट् प्र० १। (३) **आ वर्तयामसि**—लौटाते हैं। आ+वृत् (लौटना, भ्वादि)+णिच्+उ० ३। मः को मसि (४) **क्षयाय**—निवास के लिए। क्षय का अर्थ निवास है। (५) **जीवसे**—जीवन के लिए। जीव्+तुमर्थ में असे प्रत्यय।

१७. मन हृदय का निर्देशक

आ यन्मा वेना अरुहन्नृतस्यँ
एकमासीनं हर्यतस्य पृष्ठे।
मनश्चिन्मे हृद आ प्रत्यवोचद्
अचिक्रदन् शिशुमन्तः सखायः॥

ऋग्० ८.१००.५

अन्वय—यत् ऋतस्य वेना हर्यतस्य पृष्ठे आसीनम् एकं मा आ अरुहन्, मनः चित् मे हृदे आ प्रति अवोचत्, शिशुमन्तः सखायः अचिक्रदन्।

शब्दार्थ—(यत्) जब, (ऋतस्य) ऋततत्त्व के, (वेनाः) इच्छुक, जिज्ञासु, (हर्यतस्य) मनोरम अन्तरिक्ष के, (पृष्ठे) पीठ पर, स्थान पर, (आसीनम्) विद्यमान, स्थित, (एकम्) एक, (मा) मुझको, (आ अरुहन्) चढ़े, प्राप्त हुए, (मनः चित्) मन ने, (मे) मेरे, (हृदे) हृदय से, (आ प्रति अवोचत्) कहा, (शिशुमन्तः) पुत्रयुक्त, पुत्रों के सहित, (सखायः) मित्र लोग, (अचिक्रदन्) मेरे लिए चिल्ला रहे हैं, रो रहे हैं।

हिन्दी अर्थ—जब ऋततत्त्व के जिज्ञासु व्यक्ति मनोरम अन्तरिक्ष में एकमात्र विद्यमान मेरे पास पहुँचे, तब मन ने मेरे हृदय से कहा कि पुत्रों सहित मित्रगण मेरे लिए विलाप कर रहे हैं।

Eng. Tr.—When seekers of eternal truth, approached me, being alone in the pleasant mid-region, my mind told the heart that my friends, along with their sons, are weeping for me.

अनुशीलन—इस मन्त्र में आत्मतत्व और जिज्ञासु की वार्ता के प्रसंग में मन के गुण का उल्लेख है।

मन हृदय से कहता है कि उसके मित्र दुःखित हैं और विलाप कर रहे हैं। मन हृदय का निर्देशक है। हर्ष, शोक, चिन्ता, क्षोभ आदि की स्थिति में हृदय को क्या करना चाहिए, इसका निर्देशन मन करता है। हर्ष, शोक आदि की स्थिति में हृदय समवेदना की अनुभूति करता है। सहानुभूति, समवेदना, ममता, अनुराग, विषाद आदि का सम्बन्ध हृदय से है। हृदय के स्पन्दन में हर्ष-शोक आदि के क्षणों में परिवर्तन होता है, कभी तीव्रता होती है तो कभी शिथिलता। निराशा, चिन्ता और आदि के क्षणों में हृदय के स्पन्दन में विचित्र शिथिलता होती है। इसके विपरीत हर्ष-प्रसन्नता आदि के अवसरों पर स्पन्दन में तीव्रता होती है। इस प्रकार हृदय हर्ष शोक आदि से सम्बद्ध है। हृदय को कब क्या करना है, क्या उचित है, आदि का निर्देशन मन के द्वारा होता है।

टिप्पणी--(१) आ अरुहन्—चढ़े, पहुँचे। रुह् (चढ़ना, भ्वादि)+ लुङ् प्र० ३। अ Aorist है। (२) प्रति अवोचत्—बोला। ब्रू (वच्, कहना, अदादि) + लुङ् प्र० १। ब्रू को वच्। (३) अचिक्रदन्—रोए, चिल्लाए। क्रन्द् (रोना, भ्वादि) + लुङ् प्र० ३। धातु को द्वित्व है।

१८. मन अक्षय ज्ञान का कोष

पतङ्गो वाचं मनसा बिभर्ति
तां गन्धर्वोऽवदद् गर्भे अन्तः।
तां द्योतमानां स्वर्यं मनीषाम्
ऋतस्य पदे कवयो नि पान्ति॥

ऋग्० १०.१७७.२

अन्वय—पतङ्गः वाचं मनसा बिभर्ति, तां गर्भे अन्तः गन्धर्वः अवदत्। द्योतमानां स्वर्यं तां मनीषाम् ऋतस्य पदे कवयः नि पान्ति।

शब्दार्थ—(पतङ्गः) सर्वव्यापक परमात्मा, (वाचम्) वाणी को, वेदत्रयी-रूप वाणी को, (मनसा) अपने मन से या मन में, (बिभर्ति) धारण करता है। (ताम्) उसको, (गर्भे अन्तः) शरीर के अन्दर विद्यमान, (गन्धर्वः) प्राण वायु, (अवदत्) कहता हैं, प्रेरित करता है। (द्योतमानाम्) तेजोमय, (स्वर्यम्) सुख के साधन, स्वर्ग पहुँचाने वाली, (ताम्) उस, (मनीषाम्) बुद्धि को, वेदत्रयी को, (ऋतस्य पदे) सत्य के स्थान पर, तत्त्वचिन्तन के स्थानों पर, (कवयः) क्रान्तदर्शी विद्वान्, (नि पान्ति) रक्षा करते हैं।

हिन्दी अर्थ—सर्वव्यापक परमात्मा वेदत्रयीरूपी वाणी को मन से धारण करता है। शरीर के अन्दर विद्यमान प्राणवायु उस वाणी को प्रेरित करता है। उस तेजोमय, सर्वसुखद वेदत्रयीरूपी ज्ञान (बुद्धि) को तत्त्वचिन्तन के स्थानों पर (प्रवचन करके) विद्वान् लोग उसकी रक्षा करते हैं।

Eng. Tr.—The Omnipresent Supreme Being keeps in his mind the speech in the form of the Vedas. The Vital Airs in the body impel the speech. The wise men guard the luminous and bene-

volent knowledge in the form of the Vedas by preaching it at the places of theological discussions.

अनुशीलन—इस मंत्र में ईश्वर के लिए पतंग शब्द है। पतंग के अर्थ सूर्य और पक्षी भी हैं। मंत्र में मनःशक्ति के द्वारा वेदत्रयीरूपी वाणी को धारण करने का उल्लेख है।

मन की शक्ति अपार है। यह विश्व के ज्ञान का कोष है। चारों वेद मन में स्थित हैं। यह भाव मंत्र ६ में भी दिया गया है कि ऋग्वेद आदि मन में प्रतिष्ठित हैं।

यस्मिन् ऋचः साम यजूंषि०। यजु० ३४.५

मन ज्ञान और शक्ति का उत्स है। विश्व में जो कुछ भी मनन और चिन्तन हुआ है, हो रहा है और होगा, वह सभी कुछ मन के अन्तर्गत है। अतएव ज्ञान-राशि वेद भी मन में प्रतिष्ठित है।

मंत्र में बुद्धि को तेजोमयी और सुख का साधन बताया है। बुद्धि प्रवचन से पुष्ट होती है और सुरक्षित रहती है। ज्ञान-विज्ञान की रक्षा बुद्धि का कर्म है। इसी प्रकार वेदों की रक्षा को भी बुद्धि का उत्तरदायित्व बताया गया है। बुद्धि में तेजस्विता और दिव्यता है। बुद्धि की यह शक्ति ही मनुष्य को तेजस्वी और दिव्य बनाती है।

टिप्पणी— (१) **पतङ्गः**—सर्वव्यापक परमात्मा, सूर्य, पक्षी। (२) **बिभर्ति**—धारण करता है। भृ (धारण करना, जुहोत्यादि) + लट् प्र० १। (३) **गन्धर्वः**—गन्धर्व, प्राण। प्राणो वै गन्धर्वः, जैमिनीय उप० ब्रा० ३.३६.३। (४) **अवदत्**—बोला, प्रेरित किया। वद् (बोलना, भ्वादि) + लङ् प्र० १। (५) **पान्ति**—रक्षा करते हैं। पा (रक्षा करना, अदादि) + लट् प्र० ३।

१९. मन का कार्य चिन्तन

मनसा संकल्पयति, तद् देवाँ अपि गच्छति।
अथो ह ब्रह्मणो वशाम्, उपप्रयन्ति याचितुम्॥

अथर्व० १२.४.३१

अन्वय—मनसा सं कल्पयति, तत् देवान् अपि गच्छति। अथो ह ब्रह्मणः वशां याचितुम् उपप्रयन्ति।

शब्दार्थ—(मनसा) मन से, (सं कल्पयति) संकल्प या चिन्तन करता है। (तत्) वह मन, (देवान्) देवों या ज्ञानेन्द्रियों के पास, (अपि गच्छति) जाता है। (अथो ह) और, (ब्रह्मणः) विद्वान् लोग, (वशाम्) गाय को, बुद्धि या पृथिवी को, (याचितुम्) मांगने के लिए, (उपप्रयन्ति) समीप जाते हैं।

हिन्दी अर्थ— मन से संकल्प करता है। वह मन देवों (ज्ञानेन्द्रियों) तक जाता है। अतएव विद्वान् लोग बुद्धि को मांगने के लिए (गुरु के समीप) जाते हैं।

Eng. Tr.—One resolves by means of mind. The mind goes to the sense organs. Therefore the wise men approach the teachers for gaining intellectual attainments.

अनुशीलन—इस मन्त्र में मन का कार्य संकल्प अर्थात् विचार बताया गया है। चिन्तन और मनन मन का धर्म है। इसके साधन के रूप में ज्ञानेन्द्रियों का उल्लेख है। ज्ञानेन्द्रियाँ मन को भोजन पहुँचाती हैं। मन ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा अपना काम सम्पन्न करता है। वह एक ओर ज्ञानेन्द्रियों के सहयोग से सामग्री संचित करता है और उस विषय में जो कुछ करना होता है, वह भी ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ही कराता है।

फल, फूल, स्त्री, पुरुष आदि के विषय में ज्ञानेन्द्रियों ने जो कुछ देखा-सुना, वह मन तक जाता है। मन निर्णयार्थ बुद्धि को यह कार्य देता है। बुद्धि जो कुछ निर्णय करती है, वह मन को आदेश देती है। मन ज्ञानेन्द्रियों को आदेश देता है कि यह कार्य इस रूप में किया जाए। इस प्रकार मन ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से अपना कार्य करता है। उसके संकल्प और विकल्प ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ही प्रस्तुत किये जाते हैं।

टिप्पणी—(१) **सं कल्पयति**—संकल्प, विचार या चिन्तन करता है। सम् + क्लृप् (सोचना, भ्वादि) + लट् प्र० १। (२) **वशाम्**—बुद्धि को। बुद्धि

सबको वश में रखती है । वशा के अर्थ हैं—गाय, पृथिवी । (३) उपप्रयन्ति—पास जाते हैं । उप + प्र + इ (जाना, अदादि) + लट् प्र० ३ ।

२०. मन संकल्पशक्ति का स्रोत

**मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय ।
पशूना ँ रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः
श्रयतां मयि स्वाहा ॥** यजु० ३९.४

अन्वय—मनसः कामम् आकूतिम्, वाचः सत्यम् अशीय, पशूनां रूपम्, अन्नस्य रसः, यशः श्रीः मयि श्रयतां स्वाहा ।

शब्दार्थ—(मनसः) मन की, (कामम्) कामनाओं को, (आकूतिम्) संकल्प को, (वाचः) वाणी की, (सत्यम्) सत्यता को, (अशीय) प्राप्त करूँ । (पशूनाम्) पशुओं का, (रूपम्) सौन्दर्य, (अन्नस्य) अन्न का, (रसः) स्वादुत्व, (यशः) कीर्ति, (श्रीः) वैभव, (मयि) मुझमें, (श्रयताम्) होवें । (स्वाहा) एतदर्थ आहुति देता हूँ ।

हिन्दी अर्थ—मैं मन की कामनाओं और संकल्पों को तथा वाणी की सत्यता को प्राप्त करूँ । मुझमें पशुओं का सौन्दर्य, अन्न का रस, यश और वैभव हो । एतदर्थ आहुति देता हूँ ।

Eng. Tr.—May I attain the wishes of mind and truthfulness of speech. May I possess beautiful animals, sweet grains, fame and prosperity. For this purpose I am offering oblation.

अनुशीलन— सत्य और समृद्धि का स्थिर सम्बन्ध है । सत्य का ही दूसरा पक्ष स्थिरता और समृद्धि है । सत्य कल्पवृक्ष है, जिससे मानव की सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं । सत्य से शिव संकल्प और शिव संकल्प से श्री-वृद्धि । सत्य जहाँ एक ओर मानव की कामनाओं को पूर्ण करता है, वहाँ दूसरी ओर वह मनुष्य की वाणी में माधुर्य और शक्ति प्रदान करता है । अतएव शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि जो सत्य बोलता है, उसका प्रतिदिन तेज बढ़ता जाता है और प्रतिदिन श्री-वृद्धि होती जाती है ।

स यः सत्यं वदति''''तस्य भूयो भूय एव तेजो भवति, श्वः-श्वः श्रेयान् भवति। ''''तस्मादु सत्यमेव वदेत्। शत० २.२.२. १९।

सत्य से होने वाली श्री-वृद्धि में धन-धान्य, पशु-समृद्धि, कीर्ति, वैभव और आत्मिक आनन्द, सभी सम्मिलित हैं। अतएव सत्य को सभी समृद्धियों का मूल बताया गया है।

टिप्पणी—(१) **आकूतिम्**—मानसिक संकल्पों को। आ + कू + ति। (२) **वाचः०**—वाणी की सत्यता पाऊँ, अर्थात् मैं सदा सत्य बोलूँ। (३) **अशीय**—पाऊँ। अश् (पाना) + विधिलिङ् उ० १। (४) **श्रयताम्**—प्राप्त हों। श्रि + लोट् प्र० १।

२१. मन के विविध गुण

मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये।
मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम्॥

अथर्व० ६. ४१. १

अन्वय—मनसे चेतसे धिये आकूतये उत चित्तये मत्यै श्रुताय चक्षसे वयं हविषा विधेम।

शब्दार्थ—(मनसे) मनन शक्ति के लिए, मानसिक प्रेरणाओं और संवेदनाओं के लिए, (चेतसे) चेतना के लिए, चिन्तन के लिए, (धिये) धारणात्मक बुद्धि के लिए, अवधान क्रिया के लिए, (आकूतये) संकल्पों के लिए, विविध संवेगों के लिए, (उत) और, (चित्तये) स्मृति के लिए, स्मरण एवं विस्मरण-निरोध क्रियाओं के लिए, (मत्यै) बुद्धि के लिए, (श्रुताय) श्रवण के लिए, शिक्षण क्रिया के लिए, (चक्षसे) दर्शन क्रिया के लिए, प्रत्यक्षीकरण क्रिया के लिए, (वयम्) हम, (हविषा) हवि से, (विधेम) यज्ञ करते हैं, पूजा करते हैं।

हिन्दी अर्थ—हम मनन शक्ति (मानसिक प्रेरणाओं और संवेदनाओं) के लिए, चेतना एवं चिन्तन के लिए, धारणात्मक बुद्धि (अवधान) के लिए, संकल्पों (विविध संवेगों) के लिए, स्मृति-शक्ति के लिए, बुद्धि के लिए, श्रवण

(शिक्षण क्रिया) के लिए और दर्शन क्रिया (प्रत्यक्षीकरण) के लिए हम हवि से पूजन करते हैं।

Eng. Tr.—We offer our oblations to the fire for mental sensations and motivations, for consciousness and thinking, for attention, for various emotions, for remembering, for intelligence, for learning and for perception.

अनुशीलन—इस मन्त्र में मन के विविध गुणों का बहुत सूक्ष्मता से वर्णन किया गया है। मन के समस्त गुणों के विकास के लिए यज्ञ का विधान है। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार मन के जो गुण-धर्म वर्णन किये जाते हैं, उनका इस मन्त्र में इस प्रकार वर्णन है —

'मनसे' अर्थात् मनन शक्ति के लिए। इससे मानसिक संवेदना (Sensation) और प्रेरणा (Motivation) गुणों का ग्रहण है। 'चेतसे' के द्वारा चेतना (Consciousness) और चिन्तन (Thinking) को ग्रहण किया गया है। 'धिये' के द्वारा एकाग्रता या अवधान (Attention) का ग्रहण है। 'आकूतये' के द्वारा विविध संकल्प एवं संवेग (Emotions) का ग्रहण है। 'चित्तये' के द्वारा स्मृति (Remembering) और तदभाव रूप में विस्मृति (Forgetting) का ग्रहण है। 'मत्यै' के द्वारा बुद्धि-व्यापार और ज्ञान (Intelligence) का ग्रहण है। 'श्रुताय' के द्वारा श्रवण और अध्ययन (Learning) का ग्रहण है। 'चक्षसे' के द्वारा दर्शनक्रिया और प्रत्यक्षीकरण (Perception) का ग्रहण है।

इस मन्त्र से ज्ञात होता है कि मन के गुण-धर्मों का अनुशीलन करने में मनोविज्ञान से सम्बद्ध तत्त्वों का उचित रूप से संकलन किया गया है। मन की विविध धाराएँ हैं। उनमें से आठ धाराओं को इस मन्त्र में संकलित किया गया है।

टिप्पणी—(१) **विधेम**—यज्ञ करते हैं, पूजा करते हैं। विध् (पूजा करना, तुदादि) + विधिलिङ् उ० ३।

२२. मन के गुण : ज्ञान और कर्म

भद्रं नो अपि वातय
मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
अधा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे
रणन् गावो न यवसे विवक्षसे ॥

ऋग्० १०. २५. १

अन्वय—(हे सोम) नः मनः भद्रम् अपि वातय । दक्षम् उत क्रतुं (कुरु) । अध ते सख्ये, वः अन्धसः विमदे रणन्, गावः न यवसे, विवक्षसे ।

शब्दार्थ—(हे सोम) हे सोम्यगुणयुक्त परमात्मन् !, (नः) हमारे, (मनः) मन को, (भद्रम्) कल्याण को, (अपि वातय) प्राप्त कराओ, (दक्षम्) ज्ञानयुक्त, (उत) और, (क्रतुम्) कर्मठ करो । (अध) और, (ते) तेरे, (सख्ये) मित्रता में, (वः) तुम्हारे, (अन्धसः) अन्न के, सोमरस के, (विमदे) आनन्द में, (रणन्) प्रसन्न रहें । (गावः न) जैसे गायें, (यवसे) घास में प्रसन्न रहती हैं । (विवक्षसे) तुम वर्णनीय हो, महान् हो ।

हिन्दी अर्थ— हे सोम्यगुणयुक्त परमात्मन् ! तुम हमारे मन को कल्याण की ओर ले चलो । (हमारे मन को) ज्ञानयुक्त और कर्मण्य बनाओ । हम तुम्हारी मित्रता में और तुम्हारे द्वारा प्रदत्त अन्न के आनन्द में प्रसन्न रहें, जैसे गायें घास पाकर प्रसन्न होती हैं । तुम सर्वथा वर्णनीय हो ।

Eng. Tr. – O Noble God ! Lead our mind to the path of welfare. May you make our mind intelligent and active. Let us enjoy in your friendship and remain happy with the food-stuff provided by you, as the cows are pleased with the grass. You are a mighty one.

अनुशीलन—इस मन्त्र में मन के तीन गुणों का वर्णन किया गया है। ये हैं—१. मन पवित्र हो, २. मन ज्ञानवान् और चेतन हो, ३. मन कर्मठ हो।

ये तीन गुण व्यक्तित्व (Personality) के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान करते हैं। 'भद्रं मनः' पवित्र मन शील, विनय, सच्चरित्रता और सत्-प्रवृत्ति का सूचक है। पवित्र मन मनुष्य को उन्नति, विकास और दिव्यता की ओर ले जाता है।

'दक्षं मनः' ज्ञानवान् और विवेकशक्तिसंपन्न मन कर्तव्याकर्तव्य के निर्धारण में सक्षम होता है। वह हेय और उपादेय का बोध कराता है। वह हेय दोष, पाप, अधर्म आदि के निरोध की शिक्षा देता है तथा उपादेय सत्कर्म सद्गुण और सद्विचार के प्रति रुचि उत्पन्न करता है।

'क्रतुं मनः' कर्मठ मन सत् संवेगों का आधार होता है। संवेगों को जागृत करके उनसे उत्तम फल पाना मन के क्रतुत्व का परिणाम है। जीवन में जागृति, विकास, उन्नति और सफलता क्रतु गुण के कारण होते हैं।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि व्यक्तित्व के विकास के लिए भद्र, दक्ष और क्रतु मन का असाधारण महत्त्व है।

टिप्पणी—(१) **वातय**—चलाओ, प्राप्त कराओ। वात + णिच् + लोट् म० १। (२) **अन्धसः**—अन्न के। अन्धस् (अन्न) + ष० १। (३) **विमदे**—आनन्द में। विमद + स० १। (४) **रणन्**—प्रसन्न रहें। रण् (प्रसन्न होना, भ्वादि) + लङ् प्र० ३। (५) **विवक्षसे**—वर्णनीय हो। ब्रू (वच् , कहना, अदादि) + सन् = विवक्ष + लट् म० १।

२३. मन का कार्यक्षेत्र व्यापक

अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परश्चर।
परो निर्ऋत्या आचक्ष्व, बहुधा जीवतो मनः॥

ऋग्० १०. १६४. १; अथर्व० २०. ९६. २४

अन्वय—हे मनसस्पते ! अप इहि, अप क्राम, परः चर। निर्ऋत्यै परः आ चक्ष्व, जीवतः मनः बहुधा।

शब्दार्थ—(हे मनसस्पते !) हे मन के अधिपति !, दुःस्वप्न पाप आदि के देव !, (अप इहि) दूर हटो। (अप क्राम) दूर जाओ। (परः) दूर, (चर) विचरण करो। (निर्ऋत्यै) पाप-देवता या विनाश को, (परः) दूर से ही, (आ चक्ष्व) कह दो, (जीवतः) जीवित मनुष्य का, (मनः) मन, (बहुधा) अनेक प्रकार का होता है, अनेक विषयों में जाता है।

हिन्दी अर्थ—हे मन के अधिपति ! (दुःस्वप्न आदि के देव !), तुम दूर हटो, दूर जाओ, दूर विचरण करो। तुम पाप-देवता को दूर से ही कह दो कि जीवित मनुष्य का मन विविध विषयों में जाता है (अर्थात् अनेक रूप अपनाता है)।

Eng. Tr.—O Lord of evil mind ! Be away. Go away. Roam elsewhere. May you tell the goddess of misfortune that the mind of a living being takes various forms.

अनुशीलन—इस मन्त्र में मन के व्यापक कार्यक्षेत्र की चर्चा की गई है। मन जाग्रत् अवस्था में ही नहीं, अपितु स्वप्न अवस्था में भी क्रियाशील रहता है। मन्त्र में दुःस्वप्न के नाशन का विधान है।

स्वप्न (Dream) के दो भेद हैं—सुखद और दुःखद। दुःखद स्वप्नों को दुःस्वप्न कहते हैं। दुःस्वप्न के कारण पाप, दुर्विचार, काम, क्रोध आदि हैं। जाग्रत् अवस्था में मनोनिग्रह के द्वारा पाप आदि का निरोध होता है, परन्तु स्वप्न अवस्था में बुरे स्वप्न मनुष्य को दुःखित और चिन्तित करते हैं। अतः मन्त्र में बुरे स्वप्नों को दूर करने के लिए पाप के देवता को भगाने का उल्लेख है।

पाप का देवता कौन है ? पाप का देवता भी मन है, अतः उसे मनसस्पति कहा गया है। दुर्विचार, दुर्भाव, अनिष्ट-चिन्तन, काम, क्रोध आदि के भावों के निग्रह का काम भी मन करता है, अतः उसके पवित्रीकरण पर बल दिया गया है।

मन्त्र के अन्तिम पद में यही बात स्पष्ट की गई है कि मनुष्य का मन अनेक प्रकार का है। वह कभी बुराई की ओर जाता है, कभी अच्छाई की ओर। दुर्गुण से बुरे स्वप्न आदि आकर दुःखित करते हैं। उनकी चिकित्सा है कि सद्गुणों को अपना कर सुखी हों और स्वप्न में भी सुख की अनुभूति करें।

टिप्पणी—(१) **अप इहि**—दूर हटो। अप + इ (जाना, अदादि) + लोट् म० १। (२) **अप क्राम**—दूर जाओ। अप + क्रम् (जाना, भ्वादि) + लोट् म० १। (३) **चर**—जाओ। चर् (घूमना, भ्वादि) + लोट् म० १। (४) **आ चक्ष्व**—कहो। आ + चक्ष् (कहना, अदादि) + लोट् म० १।

२४. मन के सहायक तत्त्व

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि
मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि।
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥

अथर्व० १९. ९. ५

अन्वय—इमानि यानि पञ्च इन्द्रियाणि मनःषष्ठानि, ब्रह्मणा संशितानि, मे हृदि (सन्ति), यैः एव घोरं ससृजे, तैः एव नः शान्तिः अस्तु।

शब्दार्थ—(इमानि यानि) ये जो, (पञ्च) पाँच, (इन्द्रियाणि) इन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ, (मनःषष्ठानि) जिनमें मन छठा है, (ब्रह्मणा) ज्ञान से; (संशितानि) तीक्ष्ण,तेजस्वी, (मे) मेरे, (हृदि) हृदय में हैं। (यैः एव) जिनसे, (घोरम्) भयंकर, दुःखद, (ससृजे) उत्पन्न किया, बनाया, (तैः एव) उनसे ही, (नः) हमें, (शान्तिः) शान्ति, कल्याण, (अस्तु) हो।

हिन्दी अर्थ—ये जो पांच ज्ञानेन्द्रियाँ और छठा मन ज्ञान से तीक्ष्ण हैं, जो मेरे हृदय में हैं, जिनसे भयंकर वस्तुएं भी उत्पन्न हुई हैं, उनसे ही हमें शान्ति प्राप्त हो।

Eng. Tr.—All these five sense-organs, along with the mind as the sixth, sharpdened by knowledge and seated in our hearts, which create the terrible things, may grant peace to us.

अनुशीलन—इस मंत्र में संवेदना (Sensation) और प्रत्यक्षीकरण (Perception) के साधनों का उल्लेख है। पांच ज्ञानेन्द्रियाँ और मन ये ६ तत्त्व संवेदना और प्रत्यक्षीकरण के मूल में हैं। मन ५ ज्ञानेन्द्रियों के सहयोग से अपना काम चलाता है। पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ रूप रस गन्ध आदि का ज्ञान प्राप्त करके मन को देती हैं। मन इनकी उपादेयता और हेयता पर विचार करता है। मन के निर्देशानुसार किसी वस्तु को अपनाया जाता है और किसी को छोड़ा जाता है।

मंत्र का यह भी कथन है कि मन और ज्ञानेन्द्रियां घातक भी हो सकती हैं और सुखद भी। ये मनुष्य के जीवन को दुःखमय भी कर सकती हैं और सुखमय भी। इनके दोनों रूप हैं—घोर और शान्त। मानव मन दुर्गुणों की ओर झुककर अत्यन्त घातक शत्रु हो सकता है, परन्तु यदि उसको सत्कर्मों की ओर प्रवृत्त किया जाए तो वह शान्ति और आनन्द देने वाला होता है।

मंत्र में यही कहा गया है कि मन और ज्ञानेन्द्रियाँ अपनी घातक और घोर प्रकृति को छोड़कर सुख और आनन्द के लिए हों।

टिप्पणी—(१) **संशितानि**—तीक्ष्ण, तेजोमय। सं + शो (तीक्ष्ण करना, दिवादि) + क्त (त) + प्र० ३। आ को इ। (२) **ससृजे**— बनाया। सृज् (बनाना, तुदादि) + लिट् प्र० १।

२५. बुद्धि से मन को चेतना

इन्द्र यस्ते नवीयसीं, गिरं मन्द्रामजीजनत्।
चिकित्विन्मनसं धियं, प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम्॥

ऋग्० ८-९५-५

अन्वय—हे इन्द्र ! यः ते नवीयसीं मन्द्रां गिरम् अजीजनत्, (तस्मै) प्रत्नाम् ऋतस्य पिप्युषीं चिकित्विन्मनसं धियं (देहि) ।

शब्दार्थ—(हे इन्द्र) हे ऐश्वर्यशाली परमात्मन् ! (यः) जो, (ते) तेरे लिए, (नवीयसीम्) अत्यन्त नवीन, (मन्द्राम्) मादक, सुखद, (गिरम्) वाणी को, स्तुति को, (अजीजनत्) उत्पन्न किया, प्रस्तुत किया । (तस्मै) उसको, (प्रत्नाम्) पुरातन, (ऋतस्य) सत्य से, (पिप्युषीम्) परिपुष्ट, (चिकित्विन्मनसम्) मन को चेतना या प्रेरणा देने वाली, (धियम्) बुद्धि दो ।

हिन्दी अर्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमात्मन् ! जो तेरे लिए अति नवीन एवं मनोरम स्तुति प्रस्तुत करता है, उसको प्राचीन, सत्य से परिपुष्ट एवं मन को चेतना देने वाली बुद्धि दो ।

Eng Tr.—O Glorious God ! Whosoever presents a new and pleasing prayer to you, grant him the everlasting intellect, nourished by the truth. So that it may impel the mind.

अनुशीलन—इस मंत्र में बुद्धि के दो गुणों का उल्लेख है । ये हैं—१. बुद्धि मन को प्रेरणा देती है, २. बुद्धि ऋत से पुष्ट होती है ।

मन का कार्य संकल्प और विकल्प है । संकल्प मनुष्य में विवेकयुक्त क्रियाशीलता देता है । इसके द्वारा कर्तव्याकर्तव्य का विवेक होता है । ग्राह्य और हेय का विवेचन संकल्प का कार्य है । इसके विपरीत विकल्प अनिश्चय की स्थिति में डालता है । वह तर्क और वितर्क में मन को फँसाता है । निश्चय करना और निर्णयात्मक ज्ञान देना बुद्धि का कार्य है । अतः बुद्धि को नियन्ता कहा गया है । मन की प्रेरणा का आधार बुद्धि है ।

बुद्धि के वर्धक और नाशक दो प्रकार के तत्त्व हैं । ऋत तत्त्व बुद्धि का वर्धक है और अनृत नाशक तत्त्व । सत्य, सदाचार, सुशीलता आदि ऋत तत्त्व के अन्तर्गत हैं । इनसे बुद्धि की पुष्टि होती है । इसके विपरीत अनृत, पाप, क्रोध,

मोह और मादक द्रव्य आदि इसके नाशक हैं। अतएव मंत्र का निर्देश है कि ऋत तत्त्व को अपनावें ओर अनृत को छोड़ें।

टिप्पणी—(१) **नवीयसीम्**—नवीनतर, अधिक नवीन। नव + ईयस् + ङीप् + द्वि० १। (२) **अजीजनत्**—उत्पन्न किया। जन् (उत्पन्न होना, दिवादि) + णिच् + लुङ् प्र० १। (३) **चिकित्विन्मनसम्**—चेतन मन वाली, चेतनाप्रद। (४) **पिप्युषीम्**—पुष्ट, समृद्ध। पी (फूलना, भ्वादि) + लिट्—क्वसु + ङीप् द्वि० १।

२६. मन से शुभ-अशुभ की सृष्टि

इदं यत् परमेष्ठिनं, मनो वां ब्रह्मसंशितम्।
येनैव ससृजे घोरं, तेनैव शान्तिरस्तु नः॥

अथर्व० १९.९.४

अन्वय—इदं यत् वां परमेष्ठिनं ब्रह्मसंशितं मनः, येन एव घोरं ससृजे, तेन एव नः शान्तिः अस्तु।

शब्दार्थ—(इदम्) यह, (यत्) जो, (वाम्) तुम दोनों का, दम्पती या गुरु-शिष्य का, (परमेष्ठिनम्) ब्रह्मसंबन्धी, ईश्वरीय शक्तिसंपन्न, (ब्रह्मसंशितम्) ज्ञान से तीक्ष्ण या तेजस्वी, (मनः) मन है, (येन एव) जिससे, (घोरम्) भयंकर, दुःखद या अशुभ को, (ससृजे) बनाया, (तेन एव) उससे ही, (नः) हमें, (शान्तिः) शान्ति, (अस्तु) हो।

हिन्दी अर्थ—**यह जो तुम दोनों का ईश्वरीय शक्तिसंपन्न और ज्ञान से तेजस्वी मन है, जिससे दुःखद की सृष्टि होती है, उसी से हमें शान्ति प्राप्त हो।**

Eng. Tr. : The mind of you is related to the Supreme Being and is sharpened by knowledge. By which the terrible things are created, let that one bring peace to us.

अनुशीलन---इस मंत्र में मन को परमेष्ठी और ब्रह्मसंशित कहा गया है। मन महान् है, परमात्मा की सर्वशक्तियों से संपन्न है, कर्ता और वर्ता है। वह सृष्टि का निर्माता और संचालक है। इसलिए उसे ब्रह्मरूप माना गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में भी उसे ब्रह्म और सम्राट् कहा गया है।

मनो ब्रह्म। गोपथ ब्रा. १ २.११

मनो वै सम्राट् परमं ब्रह्म। शत० ब्रा. १४.६.१०.१५

मनो वै सम्राट् परमं ब्रह्म। बृहदा. उप. ४.१.६

मन को शक्ति एवं तीक्ष्णता कहाँ से प्राप्त होती है, इसका उत्तर दिया गया है कि ब्रह्म या ज्ञान उसे तीक्ष्ण बनाता है। ज्ञान मन के दोषों को दूर करके उसे महान् शक्तिशाली बनाता है।

मन ही घोर और शान्त दोनों प्रकार की सृष्टि करता है। सत्त्वगुण-युक्त मन शान्ति, सद्भाव, स्नेह, श्रद्धा आदि उत्पन्न करता है। इसके विपरीत तमोगुण से युक्त होकर वह द्वेष, कलह, ईर्ष्या, मद, मोह और क्रोध आदि को जन्म देता है। शान्त और अशान्त दोनों प्रकार की सृष्टि करने से उसे प्रजापति भी कहा गया है।

मनो वै प्रजापतिः। तैत्ति० ब्रा० ३.७.१.२

टिप्पणी—(१) **परमेष्ठिनम्**—परमेष्ठी प्रजापति या ब्रह्म से संबद्ध, ईश्वरीय। परमेष्ठिन् + मत्वर्थ में अ, नपुं० १। (२) **ब्रह्मसंशितम्**—ज्ञान से तीक्ष्ण। सम् + शो (तीक्ष्ण करना, दिवादि) + क्त। आ को इ। (३) **ससृजे**—बनाया। सृज् (बनाना, तुदादि) + लिट् प्र० १।

२७. मन के द्वारा वशीकरण

अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि,
मम चित्तमनु चित्तेभिरेत।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि,
मम यातमनुवर्त्मान एत॥

अथर्व० ३.८.६; ६.९४.२

अन्वय—अहं मनसा मनांसि गृभ्णामि। मम चित्तं चित्तेभिः अनु आ इत। वः हृदयानि मम वशेषु कृणोमि। मम यातम् अनुवर्त्मानः आ इत।

शब्दार्थ—(अहम्) मैं, (मनसा) अपने मन से, (मनांसि) तुम्हारे मन को, (गृभ्णामि) ग्रहण करता हूँ, अपने अनुकूल बनाता हूँ। (मम) मेरे, (चित्तम्) चित्त को, हृदय को, (चित्तेभिः) अपने चित्तों से, (अनु आ इत) अनुगमन करो, अनुकूल बनाओ। (वः) तुम्हारे, (हृदयानि) हृदयों को, (मम वशेषु) अपने वश में, (कृणोमि) करता हूँ, (मम) मेरे, (यातम्) गमन या व्यवहार को, (अनुवर्त्मानः) अनुसरण करने वाले, (आ इत) आवो।

हिन्दी अर्थ— मैं अपने मन से तुम्हारे मन को ग्रहण करता हूँ। (अनुकूल बनाता हूँ)। मेरे चित्त के अनुकूल अपने चित्त बनाकर मेरा अनुसरण करो। मैं तुम्हारे हृदयों को अपने वश में करता हूँ। मेरे व्यवहार का अनुसरण करते हुए तुम मेरे साथ आवो।

Eng. Tr.—I hold your mind by my thought. May you follow me adjusting your mind with that of mine. I capture your hearts. Accompany me by following my path.

अनुशीलन—इस मन्त्र में मन के द्वारा वशीकरण की शिक्षा दी गई है। समाज का एक नेता होना चाहिए। उसके नियन्त्रण में समाज के अन्य व्यक्ति

रहें। समाज के नेता का उत्तरदायित्व है कि वह समाज की समस्याओं को हल करे और समाज का ठीक मार्गदर्शन करे। वह मनोबल से ही समाज को वश में कर सकता है।

मन्त्र का यह भी निर्देश है कि नेता ऐसा होना चाहिए जो जनता को अपने गुणों से आकृष्ट कर सके। जनता के हृदय और मन पर उसका अधिकार हो। वह जो निर्णय ले, उसका सब पालन करें। वह जो आदर्श स्थापित करे, तदनुसार सभी लोग चलें। अनायक राष्ट्र या समाज का नाश हो जाता है। अतएव कहा है कि—

अनायका विनश्यन्ति, नश्यन्ति बहुनायकाः।

जिनका कोई नेता नहीं होता, वे नष्ट हो जाते हैं। जिनके अनेक नेता होते हैं, वे भी मतभेद के कारण नष्ट हो जाते हैं।

महाभारत शान्तिपर्व में अराजकता के दोषों का वर्णन करते हुए राजा की आवश्यकता इसलिए बताई गई है कि वह प्रजा का ठीक नियन्त्रण और संचालन करेगा। वह अराजकता, उत्पीडन, शोषण आदि से प्रजा की रक्षा करेगा।

राजमूलो महाप्राज्ञ, धर्मो लोकस्य लक्ष्यते।
प्रजा राजभयादेव, न खादन्ति परस्परम्॥ महा० शान्ति० ६८.८

श्रेष्ठ राजा वही हो सकता है, जो प्रजा को अपने गुणों से जीत सके। अतएव राजा के गुणों में यज्ञ, दान, तप, सुशीलता और विद्वत्ता आदि का होना अनिवार्य बताया है।

वेदवेदाङ्गवित् प्राज्ञः, सुतपस्वी नृपो भवेत्।
दानशीलश्च सततं, यज्ञशीलश्च भारत॥ महा० शान्ति० ६९.३१

टिप्पणी—(१) **गृभ्णामि**—ग्रहण करता हूँ, अपने वश में करता हूँ। ग्रह् (पकड़ना, क्र्यादि, पर०) + लट् उ० १। ह् को भ् आदेश। (२) **एत**—आवो,

अनुसरण करो। आ + इत, आ + इ (आना, अदादि, पर०) + लोट् म० ३। (३) कृणोमि—करता हूँ। कृ (करना, स्वादि, पर०) + लट् उ० १। (४) यातम्—गति, गमन, व्यवहार। (५) अनुवर्त्मानः—अनुसरण करने वाले। अनु—पीछे, वर्त्मानः—चलने वाले। अनु + वर्त्मन् (मार्ग) + प्र० ३।

२८. पवित्र मन सर्व-सुख-दाता

सं वर्चसा पयसा सं तनूभि-
रगन्महि मनसा स ँ शिवेन।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽ-
नुमार्ष्टु तन्वो यद् विलिष्टम्॥
यजु० २. २४; ८. १४; अथर्व० ६. ५३. ३

अन्वय—वर्चसा पयसा सम् अगन्महि, तनूभिः सम् (अगन्महि), शिवेन मनसा सम् (अगन्महि)। सुदत्रः त्वष्टा रायः विदधातु। तन्वः यद् विलिष्टं (तत्) अनुमार्ष्टु।

शब्दार्थ—(वर्चसा) ब्रह्मवर्चस् से, (पयसा) दुग्धादि से, (सम् अगन्महि) युक्त हों। (तनूभिः) स्वस्थ शरीर से, (सम् अगन्महि) युक्त हों। (शिवेन मनसा) शान्त एवं पवित्र मन से, (सम् अगन्महि) युक्त हों। (सुदत्रः) शुभ दानी, (त्वष्टा) विधाता परमात्मा, (रायः) ऐश्वर्य, (विदधातु) दे, करे। (तन्वः) हमारे शरीर का, (यत्) जो, (विलिष्टम्) न्यून या निर्बल अंग है, उसे, (अनुमार्ष्टु) ठीक करे, शुद्ध करे।

हिन्दी अर्थ—हम ब्रह्मवर्चस् और दुग्धादि से युक्त हों। हम स्वस्थ शरीर वाले हों। हम शुभ मन से युक्त हों। महान् दानी परमात्मा हमें ऐश्वर्य प्रदान करें। हमारे शरीर की जो न्यूनताएँ हैं, उन्हें वह दूर करे।

Eng. Tr.—Let us be endowed with divine glory and life-

giving food. Let us be healthy and possessing sound mind. May God give us prosperity and compensate our physical deficiencies.

अनुशीलन—मंत्र में पवित्र मन का महत्त्व बताया गया है। मानव-जीवन अभ्युदय और निःश्रेयस के लिए है। अभ्युदय का अभिप्राय है—सांसारिक उन्नति, सांसारिक सुख-वैभव। जीवन में सांसारिक उन्नति का भी अपना स्थान है। संपन्न व्यक्ति ही समाज में आदर पाता है। मंत्र में कतिपय अभीष्ट बातों का उल्लेख है :—इसमें ब्रह्मवर्चस्, सुन्दर स्वास्थ्य, शुभ मन और दुग्धादि या धन-धान्य की समृद्धि का संग्रह है। जब मनुष्य का मन शुभ विचारों से युक्त होगा, तब उसमें प्रसाद-गुण आएगा। इस प्रसन्नता के फलस्वरूप उसके मुख पर आभा या दीप्ति होगी। इसे ही ब्रह्मवर्चस् कहते हैं। इसके साथ ही नीरोगता रहती है। संयमी व्यक्ति ही ब्रह्मवर्चस्वी हो सकता है। इस वर्चस् से रोग के अणु नष्ट हो जाते हैं और श्रीवृद्धि होती है। मंत्र में प्रार्थना की गई है कि परमात्मा हमें ऐश्वर्य दे और शारीरिक न्यूनताओं को दूर करे। किसी प्रकार की कोई भी न्यूनता हो, वह शुभ विचार, शिव मन या शिव संकल्प से दूर हो सकती है। अतः मन की पवित्रता, शिव संकल्प और शुभ विचारों पर सबसे अधिक ध्यान देना चाहिए।

टिप्पणी—(१) **वर्चसा**—वर्चस् ब्रह्मवर्चस् या ब्रह्मतेज है। (२) **पयसा**—दूध आदि से। दूध और घी आदि गव्य के लिए पयस् शब्द है। (३) **सम् अगन्महि**—युक्त हों, संगत हों। सम् + गम् (जाना, भ्वादि) + लुङ् उ० ३। सम् के कारण आत्मनेपदी है। (४) **त्वष्टा**—बनाने वाला, विधाता। (५) **सुदत्रः**—सुन्दर दाता। सु + दा + ष्ट्रन् (त्र)। (६) **विदधातु**—करे, दे। वि + धा (धारण करना, जुहोत्यादि) + लोट् प्र० १। (७) **अनुमार्ष्टु**—शुद्ध करे, ठीक करे। अनु + मृज् (शुद्ध करना, अदादि) + लोट् प्र० १। (८) **विलिष्टम्**—निर्बल अंग, भग्न अंग, शारीरिक न्यूनता।

२९. शुद्ध मन और तप से मुक्ति

यज्ञं यन्तं मनसा बृहन्तम्
अन्वारोहामि तपसा सयोनिः ।
उपहूता अग्ने जरसः परस्तात्
तृतीये नाके सधमादं मदेम ॥

अथर्व० ६.१२२.४

अन्वय—बृहन्तं यज्ञं यन्तं (देवम्) तपसा सयोनिः, मनसा अन्वारोहामि । हे अग्ने ! उपहूताः जरसः परस्तात् तृतीये नाके सधमादं मदेम ।

शब्दार्थ—(बृहन्तम्) महान्, (यज्ञम्) यज्ञ में, (यन्तम्) जाते हुए, विद्वानों के साथ, (तपसा) तपस्या से, (सयोनिः) सगोत्र, समान शक्ति-संपन्न, (मनसा) मन से, (अन्वारोहामि) यज्ञभूमि में चढ़ता हूँ । (हे अग्ने) हे अग्निदेव !, (उपहूताः) आपके द्वारा आमन्त्रित हम, (जरसः परस्तात्) वृद्धावस्था के पश्चात्, इस शरीर के त्याग के बाद,(तृतीये नाके)सर्वोच्च मुक्तिपद में, सब दुःखों से रहित स्वर्ग या मुक्ति धाम में, (सधमादम्)साथ प्रसन्नतापूर्वक रहते हुए, (मदेम) आनन्दित हों ।

हिन्दी अर्थ—महान् यज्ञ में जाते हुए विद्वानों के साथ, तपस्या से समान शक्ति वाला, मैं मन से यज्ञभूमि में जाता हूँ । हे अग्निदेव ! आपके द्वारा आमन्त्रित हम वृद्धावस्था के पश्चात् (शरीर त्याग कर) परम मुक्तिधाम में साथ ही प्रसन्नतापूर्वक रहते हुए आनन्दित हों ।

Eng. Tr.—I having the sanctity of penance, go to the sacrificial place, along with the learned persons, who are going to the exalted sacrifice. O Fire-God ! May we, invited by you, after having attained old-age (i.e. after death), enjoy happiness in the heaven along with you.

अनुशीलन—इस मंत्र में परम पद या मोक्ष पद प्राप्त करने के लिए मन के साथ तपस्या का समन्वय आवश्यक बताया गया है। मन में महान् शक्ति है, परन्तु उसका संचालन ठीक ढंग से होना चाहिए। शुद्ध बुद्धि मन को सन्मार्ग पर ले चलती है, परन्तु बुद्धि की इस शुद्धि के लिए सत्त्व गुण का उदय होना आवश्यक है। सत्त्व गुण साधना या तपस्या से आता है। कठोर साधना से सात्त्विक गुणों का प्रादुर्भाव होता है। अतएव इस मंत्र में मन के साथ तपस्या को जोड़ा गया है।

मन के साथ तपस्या के जुड़ जाने से सभी प्रकार के विघ्न, उपद्रव, रोग, शोक आदि समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार पूर्ण सात्त्विकता के उदय होने से मनुष्य मोक्ष का अधिकारी हो पाता है। अतएव शतपथ ब्राह्मण में मन को दोष-नाशक अग्नि बताया गया है।

मन एवाग्निः। शतपथ ब्रा० १०. १. २. ३

टिप्पणी—(१) **अनु आरोहामि**—बाद में चढ़ता हूँ। आ + रुह् (चढ़ना, भ्वादि) + लट् उ० १। (२) **सयोनिः**—एक स्थान से उत्पन्न, समकक्ष, समान शक्ति वाला। स—समान, एक, योनि—उत्पत्ति-स्थान वाला। (३) **उपहूताः**—आमन्त्रित। उप + ह्वे (बुलाना, भ्वादि) + क्त। (४) **सधमादम्**—सध—साथ, मादम्—प्रसन्न रहना। (५) **मदेम**—प्रसन्न रहें, आनन्दित हों। मद् (प्रसन्न होना, भ्वादि) + विधिलिङ् उ० ३।

३०. मन की शुद्धि से पापनाश

भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये
येना समत्सु सासहः।
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां
वनेमा ते अभिष्टिभिः॥

ऋग्० ८. १९. २०; यजु० १५. ३९, ४०; साम० १५६०

अन्वय—(हे अग्ने) वृत्रतूर्ये मनः भद्रं कृणुष्व, येन समत्सु सासहः। भूरि शर्धतां स्थिरा अव तनुहि। ते अभिष्टिभिः वनेम।

शब्दार्थ—(हे अग्ने) हे तेजोमय परमात्मन् !, (वृत्रतूर्ये) पापनाश के लिए, (मनः) मन को, (भद्रम्) शुभ, पवित्र, (कृणुष्व) करो। (येन) जिससे, (समत्सु) युद्धों में, (सासहः) शत्रुओं को हराया। (भूरि) बहुत अधिक, (शर्धताम्) अभिमान करने वालों के, (स्थिरा) स्थिर वस्तुओं को भी, (अव तनुहि) नीचा करो, गिराओ, नष्ट करो। ते (तेरी), (अभिष्टिभिः) सहायता से, (वनेम) इष्ट वस्तुओं को पावें।

हिन्दी अर्थ— हे अग्निरूप परमात्मन् ! पापनाश के लिए हमारे मन को पवित्र कीजिए, जिस (पवित्र मन) से आपने युद्धों में शत्रुओं को पराजित किया। बहुत अभिमान करने वालों की स्थिर वस्तुओं को भी नष्ट करो। तुम्हारी कृपा से हम अभीष्ट वस्तुओं को प्राप्त करें।

Eng. Tr. O Fire-God ! May you purify our minds for annihilation of sins, by which you conquered your enemies in the battle-fields. May you destroy the strong-holds of the defiants. Let us attain fortune by your grace.

अनुशीलन—इस मन्त्र में पापनाश के लिए मन को पवित्र करने का उपदेश दिया गया है।

मन्त्र में पाप को वृत्र कहा गया है। पाप मनुष्य की बुद्धि को ढक लेता है और विवेक या किंकर्तव्य शक्ति को नष्ट कर देता है, अतः आवरण क्रिया के कारण पाप को वृत्र (ढकने या रोकने वाला) कहते हैं। शतपथ ब्राह्मण में इस भाव को स्पष्ट किया गया है कि पाप ही वृत्र असुर है। उसे मारने के कारण इन्द्र को वृत्रहा और पुरन्दर कहा जाता है।

वृत्रहणं पुरन्दरम् इति। पाप्मा वै वृत्रः, पाप्महनं पुरन्दरम् इत्येतत्।

शत० ब्रा० ६. ४. २. ३

पापरूपी वृत्र को मारने का उपाय मन की शुद्धि बताया गया है। मन जितना शुद्ध होगा, उतना ही पाप या पापभावना दूर रहेगी।

मन्त्र में अभिमान को बड़ा पाप गिनाया गया है। अभिमान सोम्य गुण, सद्-भाव और शील को नष्ट करना है, अतः वह विनाशक तत्त्व है। अभिमान के भाव को दूर करने से मन की शुद्धि होती है।

टिप्पणी : (१) **कृणुष्व**– करो। कृ (करना, स्वादि) + लोट् म० १। (२) **वृत्रतूर्ये**–वृत्र–पाप के, तूर्ये—हिंसा करने या नष्ट करने में। 'पाप्मा वै वृत्रः' शत० ब्रा० ११. १. ५. ७। (३) **समत्सु**–युद्धों में। समद् (युद्ध) + स० ३। (४) **सासहः**—जीता। सह् (जीतना, भ्वादि) + लेट् म० १। (५) **अव तनुहि**–गिराओ, नष्ट करो। अव + तन् (नीचा करना, तनादि) + लोट् म० १। (६) **स्थिरा**–स्थिराणि, दृढ़ वस्तुओं को भी। (७) **वनेम**–प्राप्त करें। वन् (पाना, तनादि) + विधिलिङ् उ० ३। छान्दस दीर्घ।

३१. निष्पाप मन से अभीष्टसिद्धि

मह्यं यजन्तु मम यानि हव्या-
ऽऽकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं
विश्वे देवासो अधि वोचता नः॥

ऋग्० १०.१२८.४; अथर्व० ५.३.४

अन्वय — मम यानि हव्या (हव्यानि) मह्यं यजन्तु। मे मनसः आकूतिः सत्या अस्तु। अहं कतमच्चन एनः मा नि गाम्। हे विश्वे देवासः, नः अधि वोचत।

शब्दार्थ—(मम) मेरी, (यानि) जो, (हव्यानि) हव्य वस्तुएँ हैं, वे, (मह्यं यजन्तु) मेरे लिए यज्ञ करें अर्थात् मेरी उन्नति के लिए हों। (मे) मेरे, (मनसः) मन के, (आकूतिः) संकल्प, विचार, भावनाएँ, (सत्या) सत्य, (अस्तु) हो। (अहम्) मैं, (कतमच्चन) किसी भी, (एनः) पाप को, (मा)

मत, (नि गाम्) जाऊँ, करूँ। (हे विश्वे देवासः) हे सभी देवगण, (नः) हमें, (अधि वोचत) उपदेश दीजिये, ज्ञान दीजिए।

हिन्दी अर्थ—मेरे जो कुछ भी हव्य हैं, वे मेरे लिए यज्ञ करें (मेरी उन्नति के लिए हों)। मेरे मन के संकल्प सफल हों। मैं किसी प्रकार का कोई पाप न करूँ। हे सभी देवगण! आप हमें ज्ञान दीजिए।

Eng. Tr.—May the oblations offered by me be for my prosperity. May my ambitions attain success. May I not be indulged in committing sin. O Gods, bestow knowledge on me.

अनुशीलन—अभीष्ट सिद्धि के लिए आवश्यक है कि मनुष्य के संकल्प या विचार शुभ हों। जब विचारों में पवित्रता होगी तो उनकी सफलता भी शीघ्र होगी। शुभ विचार सरिता का निर्मल प्रवाह है। वह यदि अपवित्र नहीं किया जाता है तो ओषधि के तुल्य गुणकारी है। यह अपवित्रता कहाँ से आती है? पाप के विचारों से, पाप के कार्यों से और राग-द्वेष के आधिक्य से। अतः कार्य की सफलता, मन की आकांक्षाओं की पूर्ति, विचारों की पूर्णता के लिए आवश्यक बताया गया है कि हम पाप में प्रवृत्त न हों। पाप को न सोचें और न करें। पाप-भावना, दुर्विचार एवं राग-द्वेष के दूर होते ही सफलता का मार्ग प्रशस्त होता है, इच्छाएँ पूर्ण होने लगती हैं और जीवन सुखमय हो जाता है।

टिप्पणी—(१) **मह्यं यजन्तु**—मेरे हव्य मेरे लिए यज्ञ करें अर्थात् मेरी हव्य वस्तुएँ मेरे लिए शुभ एवं उन्नतिकारक हों। (२) **यजन्तु**—यज्ञ करें। यज् (यज्ञ करना, भ्वादि) + लोट् प्र० ३। (३) **हव्या**—हव्य वस्तुएँ। हव्यानि का संक्षिप्त रूप है। (४) **आकूतिः**· संकल्प, विचार, भावनाएँ। (५) **एनः**—पाप। एनस् नपुं० है। (६) **मा नि गाम्**—न जाऊँ, न करूँ। गाम्—इ (जाना, अदादि) + लुङ् + उ० १। इ को गा आदेश। मा के कारण अडागम नहीं हुआ। (७) **अधि वोचत**—बोलो, ज्ञान दो। ब्रू (वच्, बोलना, अदादि) + लुङ् म० ३। उ का आगम। अडागम का अभाव। छान्दस दीर्घ।

३२. मन से पाप-भावना हटावें

परोऽपेहि मनस्पाप, किमशस्तानि शंससि ।
परेहि न त्वा कामये, वृक्षां वनानि सं चर,
गृहेषु गोषु मे मनः ॥

अथर्व० ६. ४५. १

अन्वय—हे मनस्पाप ! परः अप इहि, किम् अशस्तानि शंससि । परा इहि, त्वा न कामये । वृक्षान् वनानि सं चर । मे मनः गृहेषु गोषु (वर्तते) ।

शब्दार्थ—(हे मनस्पाप) हे मन के पाप !, (परः) दूर, (अप इहि) जा । (किम्) क्यों, (अशस्तानि) अशुभ बातों को, (शंससि) कहते हो । (परा इहि) दूर चले जाओ । (न) नहीं, (त्वा) तुमको, (कामये) चाहता हूँ । (वृक्षान्) वृक्षों में, (वनानि) वनों में, (सं चर) घूमो । (मे) मेरा, (मनः) मन, (गृहेषु) घरों में, (गोषु) गायों में लगा है ।

हिन्दी अर्थ—हे मन के पाप ! दूर जा । तू क्यों अशुभ बातें कहता है । दूर भाग जा । मैं तुझे नहीं चाहता । तू वृक्षों और वनों में घूम । मेरा मन घरों और गायों में लगा है ।

Eng Tr.—O Mental evil ! Be away. Why do you mention the inauspicious things ? Go away. I don't like you. Roam in the forest and trees. My mind is engaged in the cows and domestic affairs.

अनुशीलन—इस मन्त्र में ध्यान (Attention) क्रिया का महत्त्व बताया गया है । ध्यान के दो लाभ हैं—

१. अनुचित, असंगत और अशिष्ट भावों का परित्याग,

२. सम्बद्ध विषय का ठीक-ठीक ज्ञान ।

मन में पाप और पुण्य दोनों की धाराएँ सदा प्रवाहित होती रहती हैं। मन की विशेषता है कि वह एक समय में दो काम नहीं करता। मन यदि खाली है तो दोनों ओर जा सकता है—पाप या पुण्य। अतः मन को किसी एक ओर लगाना आवश्यक है। यही ध्यान की क्रिया है। इससे किसी कार्य या वस्तु का स्पष्ट ज्ञान होता है। जो कार्य किया जा रहा है, यदि मन उसके साथ संलग्न है तो वह कार्य अधिक उत्कृष्ट ढंग से सिद्ध होता है।

मन्त्र में कहा गया है कि मेरा मन घर के कामों में और गाय आदि की सेवा में लगा हुआ है, अतः अन्य विषयों की ओर मेरा ध्यान नहीं जा सकता है। मन के पाप उसे दूसरी ओर ले जाना चाहते हैं, परन्तु वह उनके प्रलोभन में नहीं आता। ध्यान का लाभ यही है कि मन दुर्गुणों और दुर्विचारों से बचा रहता है। इसीलिए मन्त्र में कहा गया है कि पाप की भावना वृक्षों और वनों में जाकर रहे।

टिप्पणी—(१) **अप इहि**—जा, हट। इ (जाना, अदादि) + लोट् म० १। (२) **शंससि**—कहते हो। शंस् (कहना, भ्वादि) + लट् म० १। (३) **परा इहि**—दूर जा। इ (जाना, अदादि) + लोट् म० १। (४) **कामये**—चाहता हूँ। कम् (चाहना, भ्वादि) + णिङ् + लट् उ० १। (५) **सं चर**—घूम। चर् (घूमना, भ्वादि) + लोट् म० १।

३३. शुद्ध हृदय से बुद्धि का परिष्कार

अहं तष्टेव बन्धुरं, पर्यचामि हृदा मतिम्।
कुवित् सोमस्यापामिति॥

ऋग्० १०. ११९. ५

अन्वय—तष्टा बन्धुरम् इव, अहं हृदा मतिं परि अचामि, कुवित् सोमस्य अपाम् इति।

शब्दार्थ—(तष्टा) बढ़ई, (बन्धुरम् इव) जैसे रथ की सीट ठीक करता है, (अहम्) मैं, (हृदा) अपने हृदय से, (मतिम्) बुद्धि को, (परि अचामि)

ठीक करता हूँ, परिष्कृत करताहूँ। (कुवित्) क्या, (सोमस्य) सोम का, (अपाम् इति) मैंने पान किया हैं ?

हिन्दी अर्थ—**बढ़ई जिस प्रकार रथ की सीट ठीक करता है, उसी प्रकार मैं अपने (शुद्ध) हृदय से अपनी बुद्धि को परिष्कृत करता हूँ। क्या वस्तुतः मैंने सोम रस का पान किया है ?**

Eng. Tr. As a carpenter furnishes the seat of a chariot, so I rectify my mind with the pious heart. Is it true that I have taken the Soma-juice ?

अनुशीलन— इस मन्त्र में हृदय की शुद्धि का महत्त्व बताया गया हैं। शुद्ध हृदय बुद्धि को परिष्कृत करता हैं। बुद्धि और योग्यता (Intelligence and Aptitude) का मनोविज्ञान में विशेष अध्ययन किया जाता हैं। इसके अन्तर्गत ही बुद्धि का परिष्कार विषय भी आता हैं। मन्त्र में बताया गया है कि जिस प्रकार बढ़ई रथ की सीट को रगड़कर सुन्दर और स्वच्छ बनाता है, उसी प्रकार हृदय को सतत परिश्रम और साधना से शुद्ध बनाया जाता है। सात्त्विक भावों को ग्रहण करना, दुर्गुणों का परित्याग, अशुद्ध विचारों का परित्याग और सद्‌विचारों तथा सद्‌गुणों को ग्रहण करना हार्दिक शुद्धि के उपाय हैं। इस हार्दिक शुद्धि से बुद्धि परिष्कृत होती है। परिष्कृत बुद्धि में ज्ञानग्रहण की क्षमता अधिक होती है और उसमें अवधान शक्ति बढ़ जाती है।

इसका फल यह भी होता है कि बुद्धि सूक्ष्म तत्त्वों को सरलता से समझ पाती है। उसकी प्रवृत्ति तमोगुणी के स्थान पर सत्त्वमूलक होती है। इस सत्त्वप्रधानता से ही साधक सोमपान या आत्मिक अमृतरस के पान का अधिकारी होता है। मन्त्र में सोमपान से आत्मिक अमृत के पान का अभिप्राय है।

टिप्पणी —(१) **तष्टा** – बढ़ई। तष्टृ + प्र० १। (२)**बन्धुरम्**—रथ में बैठने की सीट। (३) **परि अचामि**—परिष्कृत करता हूँ, शुद्ध करता हूँ। अच् (झुकाना,

ठीक करना, भ्वादि) + लट् उ० १ । (४) **कुवित्**—क्या, वस्तुतः, अनेक बार । कुविद् अव्यय है । (५) **अपाम्**—पिया । पा (पीना, भ्वादि) + लुङ् उ० १ । Root Aorist है, स् का लोप ।

३४. मनोनिग्रह से मृत्युञ्जय

यथा युगं वरत्रया, नह्यन्ति धरुणाय कम् ।
एवा दाधार ते मनो, जीवातवे न मृत्यवे,
अथो अरिष्टतातये ॥

ऋग्० १०. ६०. ८

अन्वय—यथा युगं वरत्रया धरुणाय कं नह्यन्ति, एव ते मनः जीवातवे, न मृत्यवे, अथो अरिष्टतातये दाधार ।

शब्दार्थ—(यथा) जैसे, (युगम्) जुए को, (वरत्रया) रस्सी या पट्टी से, (धरुणाय कम्) स्थिरता के लिए, रोकने के लिए, (नह्यन्ति) बाँधते हैं, (एव) उसी प्रकार, (ते) तेरे, (मनः) मन को, (जीवातवे) जीवित रहने के लिए, (न मृत्यवे) मृत्यु के लिए नहीं, (अथो) और, (अरिष्टतातये) सुरक्षा या कुशलता के लिए, (दाधार) रखा, रखते हैं ।

हिन्दी अर्थ—जैसे जूए को दृढ़ता के लिए रस्सी से बाँधते हैं, उसी प्रकार तेरे मन को जीवनी शक्ति के लिए, न कि मृत्यु के लिए और कुशलता के लिए रोककर रखते हैं ।

Eng. Tr.—As the people bind the yoke with a strap for its strength, similarly I catch hold of your mind for longevity and welfare, not for death.

अनुशीलन—इस मन्त्र में मनोनिग्रह को मृत्युञ्जय का साधन बताया गया है । मन के निग्रह के लिए उदाहरण दिया गया है कि जिस प्रकार रस्सी से जूए को

दृढ़ता से बाँधते हैं, उसी प्रकार मन को कठोरता से रोका जाता है। मन की चञ्चलता विनाश की ओर ले जाती है। उसको ही ठीक ढंग से साधने पर वह सन्मार्ग पर आता है। इसलिए मन्त्र में कहा गया है कि मन को जीवनी शक्ति की ओर ले जाना है, न कि मृत्यु की ओर।

इसका उद्देश्य क्या है ? मन्त्र में इसका उद्देश्य बताया गया है—अरिष्टताति अर्थात् सुरक्षा या कुशलता। जीवन की सुरक्षा मनोनिग्रह से है और विनाश मानसिक चञ्चलता से।

कठोपनिषद् में बताया गया है कि आत्मतत्त्व मन से ही प्राप्त किया जा सकता है। परमात्मा एक है। जो उसकी एकता को मन के द्वारा जान लेते हैं, वे अमर हो जाते हैं। जो अनेकता को देखते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं।

मनसैवेदमाप्तव्यं, नेह नानास्ति किंचन।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति, य इह नानेव पश्यति ।।

कठ० उप० २. ४. ११

टिप्पणी—(१) **युगम्**—बैल के कन्धे पर रखा जाने वाला जूआ। (२) **नह्यन्ति**—बाँधते हैं। नह् (बाँधना, दिवादि) + लट् प्र० ३। (३) **धरुणाय कम्**—रोकने या दृढ़ता के लिए। कम् निश्चयार्थक अव्यय है। (४) **दाधार**—रखा, रखते हैं। धृ (रखना, दिवादि) + लिट् प्र० १। (५) **जीवातवे**—जीवन के लिए। जीवातु + च० १। (६) **अरिष्टतातये**—सुरक्षा या कुशलता के लिए। अरिष्ट + ताति + च० १। स्वार्थ में ताति प्रत्यय।

३५. मनोनिग्रह से मृत्यु पर विजय

यमादहं वैवस्वतात्, सुबन्धोर्मन आभरम्।
जीवातवे न मृत्यवे, अथो अरिष्टतातये ।।

ऋग्० १०. ६०. १०

अन्वय—अहं वैवस्वतात् यमात् सुबन्धोः मनः जीवातवे, न मृत्यवे, अथो अरिष्टतातये आ अभरम् ।

शब्दार्थ—(अहम्) मैं, (वैवस्वतात्) विवस्वान् या प्रकाश के पुत्र, (यमात्) यम से, (सुवन्धोः) प्रिय मित्र के, (मनः) मन को, (जीवातवे) जीवित रहने के लिए, (न मृत्यवे) न कि मृत्यु के लिए, (अथो) और, (अरिष्टतातये) सुरक्षा या कुशलता के लिए, (आ अभरम्)लौटा कर लाया हूँ ।

हिन्दी अर्थ—मैं विवस्वान् (प्रकाश) के पुत्र यम से अपने प्रिय मित्र के मन को जीवित रहने के लिए, न कि मृत्यु के लिए और कुशलता के लिए, लौटाकर लाया हूँ ।

Eng. Tr.—I have brought the mind of my intimate friend back from the clutches of Yama, the son of Vivasvat, for longevity and welfare, not for death.

अनुशीलन—इस मन्त्र में भी मनोनिग्रह से मृत्यु पर विजय का वर्णन है ।

मनुष्य विपत्ति एवं संकट के अवसरों पर अपना धैर्य छोड़ देता है । उसके मित्रगण उसको धैर्य बँधाकर जीवित रखते हैं । विपत्ति में मनोबल ही सबसे बड़ा सहारा होता है । मन्त्र में मृत्यु के मुख में पड़े हुए व्यक्ति का उल्लेख है । वह जीवन और मृत्यु के द्वन्द्व में पड़ा है । यदि धैर्य छोड़ता है तो मृत्यु है । यम के दूत उसे ले जाने को तैयार हैं, परन्तु यदि मनोबल से वह अपने अन्दर शक्ति अर्जित करता है और आत्मविश्वास जागृत करता है तो वह मृत्यु से बचाया जा सकता है ।

मनोबल अपूर्व शक्ति है । उसके द्वारा असम्भव से असम्भव कार्य को सम्भव बनाया जा सकता है । मन्त्र में उसका ही निर्देश है । इस मनोबल से जीवनी-शक्ति जागृत होती है और वह मृत्यु तक पर विजय प्राप्त कर लेती है । दीर्घायु और कुशलता के मूल में यही मनःशक्ति है, जो संजीवनी शक्ति का काम देती है ।

टिप्पणी—(१) **वैवस्वतात्**—विवस्वान् या प्रकाश के पुत्र। विवस्वत् + अण् (अ)। पुत्र अर्थ में अण्। (२) **आ अभरम्**—लाया हूँ, छीनकर लाया हूँ। आ + हृ (लाना, भ्वादि) + लङ् उ० १। हृ को भ् आदेश। (३) शेष मन्त्र ३४ की टिप्पणी देखें।

३६. मन एक रथ है

मनो अस्या अन आसीद्, द्यौरासीदुत च्छदिः।
शुक्रावनड्वाहावास्तां, यदयात् सूर्या पतिम्॥

अथर्व० १४. १. १०

अन्वय—यत् सूर्या पतिम् अयात्, अस्याः मनः अनः आसीत्, उत द्यौः छदिः आसीत्, शुक्रौ अनड्वाहौ आस्ताम्।

शब्दार्थ—(यत्) जब, (सूर्या) सूर्य की पुत्री सूर्या, (पतिम्) पति के पास, पतिगृह को, (अयात्) गई, (अस्याः) इसका, (मनः) मन ही, (अनः) रथ, (आसीत्) बना था। (उत) और, (द्यौः) द्युलोक, (छदिः) छत, ऊपर का आवरण, (आसीत्) बना। (शुक्रौ) बलवान्, (अनड्वाहौ) दो बैल, (आस्ताम्) थे, जुते थे।

हिन्दी अर्थ—जब सूर्या अपने पतिगृह को चली, उस समय उसका मन ही रथ बना और द्युलोक छत (आवरण) बना। उसमें दो पुष्ट बैल जुते थे।

Eng. Tr.—When Surya, the daughter of sun, departed for her husband's house, her mind served as a chariot and the heaven as the covering. Two stout bulls were yoked to that chariot.

अनुशीलन—इस मन्त्र में सूर्य की पुत्री सूर्या या सावित्री के विवाह-मंगल का वर्णन है। इसमें मन को रथ बताया गया है।

मन एक रथ है, अतएव अभिलाषाओं को मनोरथ कहते हैं। रथ का काम है— वस्तुओं को लाना, ले जाना। मन भौतिक विषयों को ढोकर लाता है और बुद्धि तक पहुँचाता है। इन्द्रियों द्वारा रूप, रस, गन्ध आदि के जो भाव या संवेदनाएँ (Sensations) प्राप्त की जाती हैं, उनका मन के द्वारा प्रत्यक्षीकरण (Perception) होता है। इसे मानस प्रत्यक्ष कहते हैं। इस मानस प्रत्यक्ष के बाद वस्तु की ग्राह्यता और उपादेयता का निर्णय बुद्धि करती है। इस प्रकार मन समस्त संवेदनाओं को ग्रहण करके बुद्धि तक पहुँचाने का काम करता है। यह है मन के द्वारा रथ का काम करना। यह बुद्धि के आदेशों को फिर इन्द्रियों तक पहुँचाता है और हाथ आदि कर्मेन्द्रियाँ उस वस्तु को ग्रहण करती हैं या छोड़ती हैं।

टिप्पणी—(१) **अनः**—रथ, गाड़ी। अनस् (नपुं०) + प्र० १। (२) **छदिः**—छत, आवरण। छदिस् (नपुं०) + प्र० १। (३) **अनड्वाहौ**—दो बैल। अनडुह् + प्र० २। (४) **आस्ताम्**—थे। अस् (होना, अदादि) + लङ् प्र० २। (५) **अयात्**—गई। या (जाना, अदादि) + लङ् प्र० १।

३७. मन संजीवनी शक्ति है

आ न एतु मनः पुनः, क्रत्वे दक्षाय जीवसे।
ज्योक् च सूर्यं दृशे॥

यजु० ३.५४

अन्वय—नः मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे, ज्योक् च सूर्यं दृशे आ एतु।

शब्दार्थ—(नः) हमें, (मनः) मन, (पुनः) फिर, (क्रत्वे) कर्म और ज्ञान के लिए, (दक्षाय) दक्षता के लिए, (जीवसे) जीवनी शक्ति के लिए, (ज्योक् च) और दीर्घकाल तक, (सूर्यम्) सूर्य को, (दृशे) देखने के लिए, (आ एतु) आवे, प्राप्त हो।

हिन्दी अर्थ—हमें मन फिर कर्म, दक्षता और जीवनी शक्ति के लिए तथा चिरकाल तक सूर्य-दर्शन के लिए प्राप्त हो।

Eng. Tr.–May the mind come to us again for activity, dexterity and exhilaration, and to see the sun for a long time.

अनुशीलन—इस मन्त्र में मन के चार गुणों का उल्लेख किया गया है। ये हैं—१. क्रत्वे—ज्ञान प्राप्त करना और क्रियाशीलता। २. दक्षाय—कार्य में दक्षता प्राप्त करना। ३. जीवसे—उत्कृष्ट जीवन व्यतीत करना और जीवनी शक्ति प्राप्त करना। ४. दृशे—सूर्य आदि को देखना और उनका लाभ प्राप्त करना।

क्रतु शब्द ज्ञान-प्राप्ति (Learning) का निर्देशक है। मनःशक्ति के द्वारा ही मनुष्य शिक्षा प्राप्त करके क्रियाशील होता है। क्रतु शब्द ज्ञान और क्रिया दोनों का बोधक है।

दक्ष शब्द बौद्धिक विकास (Intelligence) का बोधक है। ज्ञान के पश्चात् बौद्धिक विकास होता है और उससे किसी विशेष गुण में विशेष योग्यता या पटुता प्राप्त होती है।

जीवनी शक्ति मनुष्य के व्यक्तित्व (Personality) का विकास करती है। जीवनी शक्ति से निर्जीव में सजीवता, निष्क्रिय में सक्रियता और अक्षम में क्षमता आती है।

'दृशे' दर्शन, रूप-दर्शन संवेदना (Sensation) का सूचक है। सूर्य-दर्शन के द्वारा उसके प्रकाश का ग्रहण और उसके लाभ का बोध प्रत्यक्षीकरण (Perception) है।

इस प्रकार मन्त्र में मन की चार विशेषताओं का वर्णन है।

टिप्पणी—(१) **आ एतु**—आवे। आ + इ (आना) + लोट् प्र० १। (२) **ज्योक्**—चिरकाल तक। अव्यय है। (३) **दृशे**—देखने के लिए। दृश् (देखना, भ्वादि) + तुमर्थ में ए।

३८. मनोबल अधर्षणीय है

न वा उ मां वृजने वारयन्ते,
न पर्वतासो यदहं मनस्ये।
मम स्वनात् कृधुकर्णो भयात
एवेदनु द्यून् किरणः समेजात् ॥

ऋग्० १०. २७. ५

अन्वय—मां वृजने न वै उ वारयन्ते। अहं यत् मनस्ये पर्वतासः न (वारयन्ते)। मम स्वनात् कृधुकर्णः भयाते। एव इत् अनु द्यून् किरणः सम् एजात्।

शब्दार्थ—(माम्) मुझको, (वृजने) युद्ध में, (न वै उ) कोई नहीं, (वारयन्ते) रोक सकते हैं। (अहम्) मैं, (यत्) जो कुछ, (मनस्ये) मन से सोच लेता हूँ, (पर्वतासः) पर्वत भी, (न वारयन्ते) नहीं रोक सकते हैं। (मम) मेरी, (स्वनात्) आवाज से, (कृधुकर्णः) मन्दकर्ण, कम सुनने वाला, बहरा भी, (भयाते) डर जाता है। (एव इत्) इसी प्रकार, (अनु द्यून्) प्रतिदिन, (किरणः) किरण, किरणों वाला सूर्य भी, (सम एजात्) काँप जाता है।

हिन्दी अर्थ—मुझको युद्ध में कोई नहीं रोक सकता है। मैं जो कुछ निश्चय कर लेता हूँ, उसको पहाड़ भी नहीं टाल सकता है। मेरे गर्जन से बहरा भी डर जाता है। इसी प्रकार प्रतिदिन सूर्य भी (मेरे निश्चय) से काँप जाता है।

Eng. Tr.—None can check me in the battle-field. Not even a mountain can hinder my decision. A deaf is frightened listening to my dreadful voice. Similarly the sun also trembles to learn my determination.

अनुशीलन- इस मन्त्र में दृढ़ निश्चय और मनोबल को अधर्षणीय बताया गया है। दृढनिश्चयी अपने उद्देश्य की पूर्ति में अपना सर्वस्व लगा देता है। किसी भी कार्य में सफलता के लिए दृढ निश्चय या अध्यवसाय अत्यन्त अपेक्षित है। मनुष्य को अपने निश्चय की दृढता के अनुरूप ही सफलता मिलती है।

महान् सफलता के लिए कठोर अध्यवसाय अपेक्षित होता है। संसार में जिन महापुरुषों ने महान् कार्य किये हैं, उन्हें कठोर साधना करनी पड़ी है। अपने लक्ष्य की पूर्ति में उन्हें घोर यातनाएँ सहनी पड़ी हैं और अपना सर्वस्व भी अर्पण करना पड़ा है। अतएव संस्कृत में कहा गया है कि कार्य की सफलता मनुष्य के दृढ निश्चय पर निर्भर होती है, न कि साधन-सामग्री पर।

क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे।

मन्त्र में दृढ निश्चय के उदाहरण के रूप में चार बातें कही गई हैं – १. मैं युद्ध के लिए तैयार होता हूँ तो मुझे कोई रोक नहीं सकता है। २. मेरे निश्चय को पहाड़ भी नहीं रोक सकता है। ३. मेरे गर्जन से बहरे भी डर जाते हैं। ४. सूर्य भी मेरे निश्चय से काँप जाता है।

मनुष्य को दृढ़ निश्चय के अनुसार मनोबल मिलता है। यह मनोबल उसे सब कामों में सफलता दिलाता है।

टिप्पणी (१) **वृजने**—युद्ध में। वृजन के अर्थ हैं—युद्ध, मण्डल, घेरा, नगर। (२) **वारयन्ते**—रोकते हैं। वृ (घेरना, रोकना) + णिच् + लट् प्र० ३। (३) **मनस्ये** सोचता हूँ। मनस् + नामधातु क्यङ् (य) + लट् उ० १। (४) **कृधुकर्णः**—कम सुनने वाला, बहरा। (५) **भयाते**—भीं (डरना) + लेट् प्र० १। Sub. है। (६) **किरणः** सूर्य की किरणें या सूर्य। (७) **सम् एजात्** काँप जाता है। एज् (काँपना) + लेट् प्र० १। Sub. है।

३९. मनोबल से व्यक्ति अजेय

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद् धनं
न मृत्यवेऽव तस्थे कदाचन।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु
न मे पूरवः सख्ये रिषाथन॥

ऋग्० १०. ४८. ५

अन्वय—अहम् इन्द्र:, धनं न परा जिग्ये इत् । मृत्यवे कदाचन न अव तस्थे । सोमं सुन्वन्तः मा इत् वसु याचत । हे पूरवः ! मे सख्ये न रिषाथन ।

शब्दार्थ—(अहम्) मैं, (इन्द्र:) इन्द्र हूँ, परम ऐश्वर्यशाली हूँ । (धनम्) धन को, अपने धन को, (न) नहीं, (परा जिग्ये इत्) हारता हूँ, मेरा ऐश्वर्य कभी न्यून नहीं होता है । (मृत्यवे) मृत्यु के लिए, (कदाचन) कभी भी, (न) नहीं, (अव तस्थे) रहता हूँ । (सोमं सुन्वन्तः) सोमरस को निकालने वाले तुम लोग, (मा इत्) मुझसे ही, (वसु) धन, ऐश्वर्य, (याचत) मांगो । (हे पूरवः) हे मनुष्यो ! (मे) मेरी, (सख्ये) मित्रता में, (न) नहीं, (रिषाथन) दुःखित होओ, कष्ट या हानि उठाओ ।

हिन्दी अर्थ—**मैं इन्द्र (परम ऐश्वर्यशाली) हूँ । मेरा धन कभी नष्ट नहीं होता । मैं कभी भी मृत्यु के वशीभूत नहीं होता हूँ । हे सोमरस को निकालने वाले मनुष्यो ! तुम मुझसे ही धन माँगो । हे मनुष्यो ! तुम मेरी मित्रता में रहते हुए कभी हानि न उठाओ ।**

Eng. Tr.—I am Indra (Lord of the riches). I never lose my wealth. I never surrender to death. O Soma-pressing persons ! Approach me for the riches. O Men ! Being in my friendship may you not suffer a loss.

अनुशीलन—यह मन्त्र वेद के विशिष्ट मन्त्रों में से एक है । इसमें मनोबल की महत्त्वपूर्ण शिक्षा दी गई है । इसका ही फल है कि मनोबल वाला व्यक्ति न अपने ऐश्वर्य को खोता है और न मृत्यु के वश में आता है ।

'अहमिन्द्रो न परा जिग्ये' मैं इन्द्र हूँ, कभी पराजित नहीं होता । जिसमें मनोबल है, वह कभी पराजित नहीं होता । मनोबल की सत्ता विजय है और मनोबल का अभाव पराजय । मनुष्य जब अपनी आत्मा का परमात्मा से सम्बन्ध करके सर्वशक्तिमान् अनुभव करने लगता है, तब उसकी हीनता दूर हो जाती है । वह फिर किसी भी कार्य में पराजित नहीं हो सकता है ।

इसका ही फल बताया गया है कि वह अपने ऐश्वर्य को नहीं हारता और न मृत्यु के वश में आता है। मनोबल मृत्युञ्जय होने का साधन है। आत्मशक्ति रोग शोक आदि दोषों को जला देती है, अतः व्यक्ति मृत्यु को जीतने में समर्थ हो जाता है। मन्त्र के चतुर्थ चरण में बताया गया है कि परमात्मा का मित्र कभी दुःखित या पतित नहीं होता है।

टिप्पणी—(१) **अहमिन्द्रः**—मैं सर्वशक्तिशाली हूँ। (२) **न परा जिग्ये**—नहीं हारता हूँ। परा + जि (हारना) + लिट् उ० १। (३) **अव तस्थे**—अव + स्था (रहना) + लिट् उ० १। आत्मनेपद है। (४) **याचत**—माँगो। याच् (माँगना) + लोट् म० ३। छान्दस दीर्घ। (५) **सख्ये**—मित्रता में। सख्य (मित्रता) + स० १। (६) **रिषाथन**—हानि उठाओ। रिष (हानि उठाना, भ्वादि) + लेट् म० ३। Sub. है।

४०. मनोबल से विश्वविजय

अभि द्यां महिना भुवम्, अभीमां पृथिवीं महीम्।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥

ऋग्. १०.११९.८

अन्वय—महिना द्याम् अभि भुवम्। इमां महीं पृथिवीम् अभि (भुवम्)। कुवित् सोमस्य अपाम् इति।

शब्दार्थ—(महिना) मैंने अपनी महिमा से, (द्याम्) द्युलोक को, (अभि भुवम्) तिरस्कृत किया है। (इमाम्) इस, (महीम्) विशाल, (पृथिवीम्) पृथिवी को, (अभि०) तिरस्कृत किया है। (कुवित्) आश्चर्य की बात है कि, (सोमस्य) सोमरस का, (अपाम् इति) मैंने पान किया है।

हिन्दी अर्थ—मैंने अपनी महिमा से द्युलोक को पराजित किया है और इस विशाल पृथिवी को भी पराजित किया है। आश्चर्य है कि मैंने सोमरस का पान किया है।

Eng. Tr.—I have conquered the heaven and the wide earth by my glory. Wonder ! I have taken the Soma–juice.

अनुशीलन—इस मन्त्र में मनोबल (Will–power, Thought-force) का वर्णन किया गया है।

मनोबल या इच्छाशक्ति संसार की सर्वोत्तम शक्ति है। यह असीम और अपरिमेय है। इसमें भौतिक और आत्मिक सभी कार्यों को करने की क्षमता है। मनोबल असम्भव को भी सम्भव बना देता है और निर्जीव में शक्ति का संचार करता है।

इस मनोबल के प्रदर्शन का एक उदाहरण दिया गया है कि मैंने मनोबल से द्युलोक और पृथ्वी को जीत लिया है। पृथ्वी और द्युलोक के असम्भव कार्यों को भी मन की शक्ति करके दिखाती है।

मन की शक्ति बढ़ाने का एक प्रकार सोमरस-पान है। सोमरस स्फूर्तिदायक रस है। श्रमसाध्य कार्यों के सम्पादन के लिए इसका सेवन किया जाता है। आत्मिक गुणों की वृद्धि में सोम्यगुणों के विकास का भी बहुत महत्त्व है।

टिप्पणी – (१) **महिना**—महिमा से। महिन् (महिमा) + तृ० १। (२) **अभि भुवम्**— तिरस्कृत किया, हराया। अभि + भू (तिरस्कृत करना, भ्वादि) + लुङ् उ० १। अडागम नहीं, Inj. है। (३) **महीम्**—महान्, विशाल। महीम् = महतीम्। (४) शेष टिप्पणी के लिए मन्त्र ३३ देखें।

४१. मनोबल से दिग्विजय

अवधीत् कामो मम ये सपत्ना
उरुं लोकमकरन्मह्यमेधतुम्।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रो
मह्यं षडुर्वीर्घृतमा वहन्तु॥

अथर्व० ९.२.११

अन्वय—मम ये सपत्नाः (तान्) कामः अवधीत् । मह्यम् एधतुम् उरुं लोकम् अकरत् । चतस्रः प्रदिशः मह्यं नमन्ताम् । षट् उर्वीः मह्यं घृतम् आ वहन्तु ।

शब्दार्थ—(मम) मेरे, (ये) जो, (सपत्नाः) शत्रु हैं, (तान्) उनको, (कामः) कामना, मनोबल ने, (अवधीत्) नष्ट कर दिया है । (मह्यम्) मेरे, (एधतुम्) बढ़ने के लिए, वृद्धि के लिए, (उरुम्) विशाल, (लोकम्) लोक, संसार, क्षेत्र, (अकरत्) किया है, बनाया है । (चतस्रः) चारों, (प्रदिशः) दिशाएँ, (मह्यम्) मेरे लिए, (नमन्ताम्) झुकें । (षट् उर्वीः) ६ भूमिभाग, ६ महाद्वीप, (मह्यम्) मेरे लिए, (घृतम्) घी, ऐश्वर्य, (आ वहन्तु) लावें ।

हिन्दी अर्थ—मेरे जो शत्रु हैं, उनको मेरे मनोबल ने नष्ट कर दिया है । उसने मेरी वृद्धि के लिए विशाल संसार बनाया है । चारों दिशाएँ मेरे सामने झुकें । ६ भूमिभाग (महाद्वीप) मेरे लिए घी (ऐश्वर्य) लावें ।

Eng. Tr.—My will-power has destroyed all my enemies. It has created a wide world for my prosperity. May all the four directions bow to me. May all the six parts of the earth bring prosperity to me.

अनुशीलन—इस मन्त्र में काम (कामना, Desire, Will) शब्द के द्वारा मनोबल या इच्छाशक्ति (Will-power) को ग्रहण किया गया है । मनोबल लौकिक और पारमार्थिक सभी कार्यों को सिद्ध करता है ।

मन्त्र में मनोबल के द्वारा किए जाने वाले कुछ कार्यों का उल्लेख है । युद्धों में विजय के लिए मनोबल की अत्यन्त आवश्यकता है । मनोबलयुक्त सेना ही शत्रु-सेना को परास्त करती है ।

मनोबल के द्वारा समृद्धि प्राप्त होती है । इस विशाल भूमि पर अपनी शक्ति के अनुसार जितना काम फैलाया जाता है, उसका लाभ व्यक्ति को मिलता है । इसमें राज्य का विस्तार, कार्यक्षेत्र का विस्तार आदि सभी सम्मिलित हैं ।

मनोबल से युक्त व्यक्ति का पृथ्वी पर साम्राज्य होता है। उसे पूर्व पश्चिम आदि चारों दिशाएँ प्रणाम करती हैं। पृथ्वी के सभी खण्ड उसकी आज्ञा में होते हैं और उसे धन-धान्य आदि से पुष्ट करते हैं। मनःशक्ति वाला व्यक्ति संसार में सर्वत्र आदरणीय होता है। संसार उसका आदेश मानता है। ऋषि, मुनि, तत्त्वज्ञानी व्यक्ति इसी कोटि में आते हैं।

टिप्पणी—(१) **अवधीत्**—मारा, नष्ट किया। हन् (मारना, अदादि) + लुङ् प्र० १। हन् को वध् आदेश। (२) **अकरत्**—किया। कृ (करना, तनादि) + लुङ् प्र० १। अ Aorist है। (३) **एधतुम्**—वृद्धि के लिए। एधतु (वृद्धि) + द्वि० १। (४) **नमन्ताम्**—झुकें। नम् (झुकना, भ्वादि आ०) + लोट् प्र० ३। (५) **षट् उर्वीः**—६ भूभाग। ६ महाद्वीप से अभिप्राय है। (६) **घृतम्**—घी। ऐश्वर्य अर्थ है। (७) **आवहन्तु**—लावें। आ + वह् (लाना, भ्वादि) + लोट् प्र० ३।

४२. मनोबल सदा विजयी

त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो
विभुर्विभावा सख आ सखीयते।
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः
सह ओजो यजमानाय धेहि॥

अथर्व० १९.५२.२

अन्वय—हे काम ! त्वं सहसा प्रतिष्ठितः असि। विभुः विभावा हे सखे ! आ सखीयते। त्वम् उग्रः पृतनासु सासहिः यजमानाय सहः ओजः धेहि।

शब्दार्थ—(हे काम) हे कामना, मनोबल ! (त्वम्) तू, (सहसा) अपनी शक्ति से, (प्रतिष्ठितः) प्रतिष्ठित, (असि) हो। (विभुः) व्यापक हो, (विभावा) तेजोमय हो। (हे सखे) हे मित्र !, (आ सखीयते) तुम सर्वथा मित्रवत् व्यवहार करते हो। (त्वम्) तुम, (उग्रः) उग्र, घोर हो, (पृतनासु) संग्रामों में, (सासहिः) विजेता

हो। (यजमानाय) यजमान को, (सहः) शक्ति, साहस, (ओजः) बल, (धेहि) रखो,दो।

हिन्दी अर्थ—हे मनोबल ! तुम अपने सामर्थ्य से प्रतिष्ठित हो। तुम व्यापक और तेजस्वी हो। हे मित्र ! तुम सर्वथा मित्रवत् व्यवहार करते हो। तुम घोर हो और युद्धों में विजेता हो। तुम यजमान को साहस और बल दो।

Eng. Tr.—O Will-power ! You are established by your own might. You are pervading and glorious. O Friend ! You behave as a Friend. You are terrible and conqueror in the battles. May you confer strength and glory on the sacrificer.

अनुशीलन—इस मन्त्र में काम शब्द से कामना, इच्छाशक्ति या मनोबल (Will-power or Thought-force) का ग्रहण है। इच्छाशक्ति या मनोबल ही मनुष्य को किसी लक्ष्य (Motive) की पूर्ति के लिए प्रेरित करता है। यह है मन का प्रेरकत्व या प्रेरणा (Mativation)। यह मनोबल कठिन से कठिन कार्य करने की क्षमता प्रदान करता है।

मन्त्र में इस मनोबल के लिए कहा गया है कि यह अपने सामर्थ्य से प्रतिष्ठित है। मनोबल के लिए किसी अन्य सहयोगी की आवश्यकता नहीं है। यह स्वयं शक्तिशाली या शक्तिरूप है। अतएव संस्कृत में कहा गया है कि कार्य की सफलता दृढनिश्चय पर है।

क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे।

यह मनोबल विभु या ब्रह्मरूप है। यह मित्रवत् उद्धारक है। युद्धों में विजय दिलाता है। यह शक्ति और ओज देता है।

गीता में अतएव कहा गया है कि अपना उद्धार अपनी आत्मशक्ति या मनोबल से करे। अपनी आत्मशक्ति का अपमान न करे। यह आत्मशक्ति ही

अपना वन्धु है। यदि इसका आदर नहीं किया जाता तो यही शत्रुवत् व्यवहार करता है और नाश का कारण होता है।

> उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
> आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ गीता ६-५

टिप्पणी—(१) **सहसा**—शक्ति से। सहस्+तृ॰ १। (२) **प्रतिष्ठितः**—प्रतिष्ठित, स्थिर। प्रति+स्था+क्त। आ को इ। (२) **विभावा**—तेजस्वी। वि+भा (चमकना)+वन्+प्र॰ १। (४) **सखीयते**—मित्रवत् आचरण करता है। सखि+क्यङ् (य)+लट् प्र॰ १। आचरण करना अर्थ में क्यङ् है। भवान् के कारण प्र॰ पु॰ है। (५) **सासहिः**—विजेता। सह् (जीतना)>सासह्+इ। (६) **धेहि**—रखो। धा (रखना, जुहोत्यादि)+लोट् म॰ १।

४३. मनोबल लोककल्याण के लिए

मनो न्वाह्वामहे, नाराशꣳसेन स्तोमेन।
पितॄणां च मन्मभिः॥

यजु॰ ३.५३; ऋग्॰ १०.५७.३

अन्वय—नाराशंसेन स्तोमेन, पितॄणां च मन्मभिः, मनः नु आह्वामहे।

शब्दार्थ—(नाराशंसेन) जन-प्रशंसायुक्त, जन-हितकारी, (स्तोमेन) स्तुतियों से, (पितॄणां च) और पितरों या पूर्वजों के, (मन्मभिः) ज्ञान से, आकांक्षाओं के अनुसार, (मनः नु) मन को, (आह्वामहे) पुकारते हैं।

हिन्दी अर्थ--हम जन-हितकारी स्तुतियों से और पितरों (पूर्वजों) की आकांक्षाओं के अनुसार मन को पुकारते हैं।

Eng. Tr.—We invoke the mind with the hymn, lauding the man, and with the noble thoughts of our ancestors.

अनुशीलन—इस मंत्र में मन को जन-कल्याण के लिए प्रेरित करने का वर्णन है। नाराशंस स्तोम का अर्थ है—जन-कल्याण के लिए प्रार्थना। नर अर्थात् मानव की, आशंस—कल्याण की कामना।

मानव-कल्याण या विश्व-कल्याण की भावना पवित्र मन की पुकार है। जब मन में पवित्रता होगी, तभी जन-हित, विश्वहित और विश्वबन्धुत्व के भाव जागृत होते हैं। मंत्र में कहा गया है कि पितरों या पूर्वजों के यही शुभ भाव रहे हैं। पूर्वजों की कामना रही है कि जनहित हो। पवित्र मन की भी यही कामना रहती है कि जनहित और विश्वहित हो। अतः मंत्र में ऐसे पवित्र मन का आह्वान किया गया है।

पवित्र मन उच्च आकांक्षाओं को जन्म देता है, प्रेरणा देता है, शक्ति और स्फूर्ति देता है तथा उत्कट आत्म-विश्वास जागृत करता है।

टिप्पणी—(१) **आह्वामहे**—बुलाते हैं। आ+ह्वे (पुकारना, भ्वादि)+लट् उ० ३। (२) **नाराशंसेन**—जन-कल्याण की भावना वाले। नराशंस+अण्। (३) **स्तोमेन**—स्तुतियों से। (४) **मन्मभिः**—ज्ञान या इच्छा से। मन्मन्+तृ० ३।

४४. मनोबल से अभीष्ट सिद्धि

यमैच्छाम मनसा सोऽयमागाद्
यज्ञस्य विद्वान् परुषश्चिकित्वान्।
स नो यक्षद् देवताता यजीयान्
नि हि षत्सदन्तरः पूर्वो अस्मत्॥

ऋग्० १०.५३.१

अन्वय—यं मनसा ऐच्छाम, सः अयम् यज्ञस्य विद्वान्, परुषः चिकित्वान् आ अगात्। सः देवताता यजीयान् नः यक्षत्। पूर्वः अस्मत् अन्तरः हि नि सत्सत्।

शब्दार्थ—(यम्) जिसको, (मनसा) मन से, (ऐच्छाम) हमने चाहा, (सः) वह, (अयम्) यह, (यज्ञस्य) यज्ञ का, (विद्वान्) ज्ञाता, (परुषः)

यज्ञ के अंगों को, (चिकित्वान्) जानने वाला अग्नि, (आ अगात्) आ गया। (सः) वह, (देवताता) देवसमूह में, (यजीयान्) सबसे अधिक पूज्य अग्नि, (नः) हमारे लिए, (यक्षत्) यज्ञ करे। (पूर्वः) वह पूर्ववर्ती अग्नि, (अस्मत्) हमारे, (अन्तरः) बीच में, (हि) अवश्य, (नि सत्सत्) बैठे।

हिन्दी अर्थ--हमने जिसको मन से चाहा, वह यज्ञ का ज्ञाता, यज्ञ के अंगों को जानने वाला अग्नि आ गया। वह देवसमूह में सबसे अधिक पूज्य है, वह हमारे लिए यज्ञ करे। वह पूर्ववर्ती है, वह हमारे बीच में बैठे।

Eng. Tr.—Whom we earnestly desired, that fire, knowing the sacrifice and its constituents, came to us. He is the most venerable amongst the deities. May he perform sacrifice for us. He is an ancestor and let him sit amongst us.

अनुशीलन—इस मंत्र में तीव्र संवेग (High Emotions) के गुण बताए गए हैं। तीव्र संवेग से युक्त मनसे जिस बात या कार्यसिद्धि को चाहते हैं, वह कार्य सिद्ध होता है। योगदर्शन में भी यही भाव दिया गया है कि तीव्र संवेग से कार्य की सिद्धि शीघ्र होती है।

तीव्रसंवेगानामासन्नः। योग० १.२१।

अग्नि यज्ञ के अंग प्रत्यंग को जानता है। वह देवों में पूज्यतम है। वह अग्नि हमारे बीच में आकर बैठे। इस अग्नि से अभिप्राय आन्तरिक अग्नि से है, जो मानव शरीर में ओज रूप में विद्यमान है। यह आन्तरिक अग्नि आत्मिक बल का स्रोत है। तीव्र संवेग के द्वारा यह आन्तरिक अग्नि प्राप्त की जाती है। अतएव मंत्र में कहा गया है कि तीव्र मन या तीव्र संवेग से हम जिस वस्तु या लक्ष्य की कामना करते हैं, वह हमें स्वयं मिलता है।

गीता में इसके लिए एकाग्र मन साधन बताया गया है। एकाग्र मन अभीष्ट लक्ष्य को सरलता से प्राप्य बना देता है।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा, यतचित्तेन्द्रियक्रियः। गीता ६.१२

टिप्पणी—(१) **ऐच्छाम**—चाहा। इष् (चाहना, तुदादि)+लङ् उ० ३। (२) **आ अगात्**—आया। इ (जाना, अदादि)+लुङ् प्र० १। इ को गा आदेश। (३) **परुषः**—अंगों को, यज्ञ के अंगों को। परुष् (अंग)+द्वि० ३। (४) **चिकित्वान्**—जानने वाला। चित् (जानना)+लिट्—क्वसु (वस्) चिकित्वस्+प्र० १। (५) **देवताता**—देवतातौ, देवसमूह में। देवताति+स० १। (६) **यक्षत्**—यज्ञ करे। यज्+लेट् प्र० १। (७) **नि सत्सत्**—बैठे। सद् (बैठना, भ्वादि)+लेट् प्र० १। Sub. है।

४५. मनोबल से असंभव भी संभव

हन्ताहं पृथिवीमिमां, नि दधानीह वेह वा।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥

ऋग्० १०.११९.९

अन्वय—हन्त अहम् इमां पृथिवीम् इह वा नि दधानि, कुवित् सोमस्य अपाम् इति।

शब्दार्थ—(हन्त) अच्छा तो, (अहम्) मैं, (इमाम्) इस, (पृथिवीम्) पृथिवी को, (इह वा) यहाँ, अन्तरिक्ष में, (इह वा) अथवा यहाँ, द्युलोक में, (नि दधानि) रखूं। (कुवित्) क्या, आश्चर्य है कि, (सोमस्य) सोमरस का, (अपाम् इति) मैंने पान किया है।

हिन्दी अर्थ—अच्छा तो, मैं इस पृथिवी को यहां (अन्तरिक्ष में) या यहाँ (द्युलोक में) रख दूं। आश्चर्य है कि मैंने सोमरस का पान किया है।

Eng. Tr.—Well. Should I place the earth here (i. e. in the mid-region) or there (i. e in the heaven). I wonder that I have taken the juice of soma.

अनुशीलन—इस मंत्र में मनोबल की अपरिमित शक्ति का उल्लेख किया गया है। मनोबल कठिन से कठिन और असम्भव से असम्भव कार्य को करने की क्षमता रखता है।

ऐसे असम्भव कार्य में पृथिवी को उठाकर अन्तरिक्ष में या द्युलोक में रखने की बात है। मनोबल ऐसे असम्भव कार्य को भी करने की सामर्थ्य प्रदर्शित करता है। जीवन में मनोबल ही कार्य को सम्भव या असम्भव बनाता है। यदि तीव्र संवेग है तो मनोबल साथ देता है और उस कार्य को सफल बनाता है। यदि तीव्र संवेग का अभाव है तो मनोबल क्षीण रहता है और कार्य असफल हो जाता है। इस प्रकार प्रेरणा का स्रोत मनोबल है।

टिप्पणी—(१) हन्त-क्या, आश्चर्य है कि। (२) नि दधानि-रखूं। नि + धा (रखना, जुहोत्यादि) + लोट् उ० १।

४६. मनोबल से शत्रुनाशन

अभीदमेकमेको अस्मि निष्षाड्
अभी द्वा किमु त्रयः करन्ति।
खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरि
किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः॥

ऋग्० १०.४८.७

अन्वय—इदम् एकः एकम् अभि अस्मि। निष्षाट् द्वा अभी (अस्मि)। किम् उ त्रयः करन्ति। खले पर्षान् न भूरि प्रति हन्मि। मा अनिन्द्राः शत्रवः किं निन्दन्ति।

शब्दार्थ—(इदम्) यहाँ, अब, (एकः) मैं अकेला ही, (एकम्) एक शत्रु को, (अभि अस्मि) पराजित करता हूँ, हराता हूँ। (निष्षाट्) शत्रुओं को जीतने वाला, विजेता, (द्वा) दो शत्रुओं को भी, (अभी अस्मि) हराता हूँ। (किमु) क्या, (त्रयः) तीन शत्रु, (करन्ति) करते हैं, मेरा क्या कर सकते हैं ?; (खले) खलिहान में (पर्षान् न) धान की पूलियों की तरह, (भूरि) बहुत अधिक, शत्रुओं को, (प्रति हन्मि) मारता हूँ, नष्ट करता हूँ। (मा) मुझको, (अनिन्द्राः) इन्द्र-हीन, आस्तिकता-हीन अर्थात् नास्तिक, (शत्रवः) शत्रुगण, (किम्) क्यों,

क्या, (निन्दन्ति) निन्दा करते हैं, अर्थात् मैं शत्रुओं की निन्दा की चिन्ता नहीं करता हूँ।

हिन्दी अर्थ--अब मैं अकेला ही एक शत्रु को जीतता हूँ। शत्रुविजयी मैं दो शत्रुओं को भी जीत लेता हूँ। तीन शत्रु मेरा क्या कर सकते हैं ? मैं खलिहान में धान की पूलियों की तरह बहुत से शत्रुओं को नष्ट कर देता हूँ। नास्तिक बहुत से शत्रु मेरी क्या निन्दा कर सकते हैं ? अर्थात् उनकी निन्दा की मैं चिन्ता नहीं करता।

Eng. Tr.—Now I alone can conquer an enemy. I, the victorious one, can even defeat two foes. What harm can the three persons do to me ? I crush the enemies, like the sheaf of paddy in a threshing floor. How the atheists can blame me ?

अनुशीलन—इस मन्त्र में मनोबल की प्रशंसा की गई है। मनोबल वाला व्यक्ति कठिन से कठिन कार्यों को सरलता से कर लेता है। वह कभी भयभीत नहीं होता। वह एक दो या तीन शत्रुओं को कुछ नहीं समझता। वह अपने शत्रुओं को इसी प्रकार रगड़ देता है, जैसे खलिहान में धान की पूलियों को रगड़ दिया जाता है।

मनोबल महान् शक्ति है। मनोबल महान् बल है। यह सभी बलों से बड़ा बल है। आत्म-विश्वास के अभाव में ही मनुष्य कायर होता है। शूर वीर मृत्यु को वरण करता है। वह प्रत्येक संकट और खतरे के लिए तैयार रहता है। इसलिए विघ्न भी उससे डरते हैं। विश्व का इतिहास बताता है कि ऐसे वीरों ने ही अपने राष्ट्रों का नाम उज्ज्वल किया है।

मन्त्र का कथन है कि नास्तिक मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते हैं। धीर व्यक्ति अपना काम करते रहते हैं। नास्तिक निन्दा करते हैं, परन्तु उनके कथन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। धीर व्यक्ति अपने लक्ष्य से च्युत नहीं होते, अतः वे सदा सफल होते हैं। महाभारत का कथन है कि मनुष्य अपने आप को संकट में

बिना डाले कोई महान् कार्य नहीं कर पाता। अपने आपको संकट में डालकर यदि वह जीवित रहता है तो सुख ही सुख देखता है।

न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति।
संशयं पुनरारुह्य, यदि जीवति पश्यति ॥ महाभारत

टिप्पणी—(१) **अभि अस्मि**—अभि भवामि, हराता हूँ। अस् (होना)+ लट् उ० १। (२) **निष्षाट्**—निः–पूर्णतया, सह्–हराने वाला, विजयी। निष्षाह्+प्र०१। (३) **करन्ति**—करते हैं। कृ (करना, अदादि)+लट् प्र० ३। (४)**पर्षान् न**—धान की पूलियों की तरह। (५) **प्रति हन्मि**—मारता हूँ। हन् (मारना, अदादि)+लट् उ० १। (६) **अनिन्द्राः**—इन्द्र-रहित, नास्तिक शत्रुगण।

४७. मन और बुद्धि का समन्वय

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो
विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्-
मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥

ऋग्० ५. ८१. १., यजु० ५. १४, ११. ४, ३७.२

अन्वय—विप्राः विप्रस्य बृहतः विपश्चितः (विषये) मनः युञ्जते, उत धियः युञ्जते। वयुनावित् एकः इत् होत्राः वि दधे। सवितुः देवस्य मही परिष्टुतिः।

शब्दार्थ—(विप्राः) विद्वान्, (विप्रस्य) मेधावी, (बृहतः) महान्, (विपश्चितः) सर्वज्ञ परमात्मा के विषय में, (मनः) अपने मन को, (युञ्जते) लगाते हैं। (उत) और, (धियः) अपनी बुद्धि को, (युञ्जते) लगाते हैं। (वयुनावित्) समस्त कर्मों को जानने वाला, सर्वज्ञ, (एकः इत्) अकेला ही, (होत्राः) विविध यज्ञों को, सात प्रकार के होताओं को, (वि दधे) बनाता है,

बनाया। (सवितुः) संसार के उत्पादक, (देवस्य) देव की, परमात्मा की, (मही) महान्, (परिष्टुतिः) स्तुति है, महिमा है।

हिन्दी अर्थ—विद्वान् व्यक्ति ज्ञानवान् एवं महान् परमात्मा में अपने मन और बुद्धि को लगाते हैं। समस्त कर्मों को जानने वाला वह परमात्मा अकेला ही विविध यज्ञों (या होताओं) की सृष्टि करता है। उस सृष्टिकर्ता परमात्मा की बड़ी महिमा है।

Eng. Tr.—The wise men engage their mind and intellect in the Supreme Being, who is omniscient and great. The Providence, knowing all deeds, alone creates the various sacrifices. That creator is glorious.

अनुशीलन—इस मन्त्र में बुद्धि (Intellect) और मन (Mind) के समन्वय से परमात्मारूपी लक्ष्य को प्राप्त करने का उल्लेख है। बुद्धि का काम निर्णय करना है। वह हेय और उपादेय, ग्राह्य और अग्राह्य का विवेक करती है। उपादेय को लेने का आदेश देती है और हेय को छोड़ने का। मन का काम है इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान बुद्धि को पहुँचाना। यदि दोनों में समन्वय है तो कार्य सुन्दर ढंग से होता है। यदि दोनों में एकरूपता नहीं है तो कार्य में कठिनाई होती है।

मन्त्र में उल्लेख है कि यदि बुद्धि और मन में समन्वय है तो लक्ष्य कितना ही ऊँचा हो, वह सिद्ध हो जाता है। लक्ष्य ईश्वर-प्राप्ति है। वह दोनों के समन्वय से सिद्ध होती है। मन की शुद्धि और बुद्धि की एकलक्ष्यता उसे निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचाती है।

टिप्पणी—युञ्जते—लगाते हैं। युज् (लगाना, रुधादि) + लट् प्र० ३। (२) होत्राः—होमों या यज्ञों को, सात होताओं को। शरीर में सात होता हैं—५ ज्ञानेन्द्रियाँ, बुद्धि और मन। (३) विदधे—किया, बनाया। वि + धा (बनाना, जुहोत्यादि) + लिट् प्र० १। (४) वयुनावित्—वयुन—कर्म एवं ज्ञान, विद्—जानने

वाला। छान्दस दीर्घ। (५) मही— महान्। (६) परिष्टुतिः—परि-अधिक, स्तुतिः—स्तुति, महिमा।

४८. मन-बुद्धि के समन्वय से सुख

त्वं धियं मनोयुजं, सृजा वृष्टिं न तन्यतुः।
त्वं वसूनि पार्थिवा, दिव्या च सोम पुष्यसि॥

ऋग्० ९. १००. ३

अन्वय—हे सोम! त्वं मनोयुजं धियं सृज। तन्यतुः वृष्टिं न। त्वं पार्थिवा दिव्या च वसूनि पुष्यसि।

शब्दार्थ—(हे सोम!) हे सोम्यरूप परमात्मन्!, (त्वम्) तू, (मनोयुजम्) मन से युक्त, (धियम्) बुद्धि को, (सृज) दो। (तन्यतुः) मेघ या बिजली, (वृष्टिं न) जैसे वर्षा को देता है। (त्वम्) तू, (पार्थिवा) भौतिक, (दिव्या च) और दिव्य, (वसूनि) धनों या ऐश्वर्यों को, (पुष्यसि) पुष्ट करते हो, देते हो।

हिन्दी अर्थ—हे सोम्यरूप परमात्मन्! तुम मन से संयुक्त बुद्धि हमें दो, जैसे मेघ वर्षा देते हैं। तुम भौतिक और दिव्य सभी प्रकार के ऐश्वर्यों को देते हो।

Eng. Tr.—O Noble God! May you vouchsafe the intellect containing the qualities of mind, as the clouds yield rain. You bestow all sorts of prosperity, terrestrial and celestial.

अनुशीलन—इस मंत्र में मनोबल से युक्त बुद्धि की प्रार्थना की गई है। साथ ही मन-युक्त बुद्धि को दिव्य और पार्थिव सभी प्रकार के सुखों का मूल बताया गया है।

बुद्धि निश्चय एवं निर्णय का आधार है। बुद्धि कर्तव्य कर्मों को निश्चित करती है। उसके आदेशानुसार मन व्यवहार करता है। मन की विशेषता है

कर्मठता और प्रेरणा । बुद्धि को यदि शुद्ध और दृढ़ संकल्प वाला मन मिल जाता है तो वह सभी अभीष्टों को सिद्ध करने में समर्थ है । अतएव मंत्र में बुद्धि की उपमा मेघ से दी गई है । मेघ वर्षा करते हैं और सृष्टि को सुख देते हैं, उसी प्रकार बुद्धि मनोरथों को सिद्ध करती है । ये मनोरथ दिव्य और पार्थिव दोनों हो सकते हैं । दिव्य मनोरथों में दैवी शक्ति, दैवी प्रतिभा और दिव्य ज्ञान संमिलित हैं। भौतिक मनोरथों या ऐश्वर्यों में भौतिक सुख की वस्तुएँ हैं ।

दृढ़ संकल्पयुक्त मन प्रेरणा का स्रोत है । वही अपनी शक्ति से ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को प्रेरित करता है । सफलता उसके दृढ निश्चय पर अवलम्बित है ।

टिप्पणी—(१) **मनोयुजम्**—मन से युक्त । मनोयुज् + द्वि० १ । (२) **सृज**—बनाओ, दो । सृज् (बनाना, तुदादि) + लोट् म० १ । छान्दस दीर्घ । (३) **तन्यतुः**—मेघ, बिजली । जिसका शब्द या प्रकाश चारों ओर फैलता है । तन्यतु + प्र० १ । (४) **पार्थिवा**—भौतिक । पार्थिवानि का संक्षिप्त रूप है । (५) **दिव्या**—दिव्य, दैवी । दिव्यानि का संक्षिप्त रूप है । (६) **पुष्यसि**—पुष्ट करते हो, देते हो । पुष् (पुष्ट करना, दिवादि) + लट् म० १ ।

४९. हृदय और मन में समन्वय हो

संज्ञपनं वो मनसो, ऽथो संज्ञपनं हृदः ।
अथो भगस्य यत् श्रान्तं, तेन संज्ञपयामि वः ॥

अथर्व० ६.७४.२

अन्वय—वः मनसः संज्ञपनम्, अथो हृदः संज्ञपनम्, अथो भगस्य यत् श्रान्तं तेन वः संज्ञपयामि ।

शब्दार्थ—(वः) तुम्हारे, (मनसः) मन का, (संज्ञपनम्) समन्वय हो । (अथो) और, (हृदः) तुम्हारे हृदय का, (संज्ञपनम्) समन्वय हो । (अथो)

और, (भगस्य) ऐश्वर्य का, (यत्) जो, (श्रान्तम्) श्रमजन्य तप रूप है, (तेन) उससे, (वः) तुम्हें, (संज्ञपयामि) समन्वित करता हूँ।

हिन्दी अर्थ—तुम्हारे मन का समन्वय (तादात्म्य) हो, तुम्हारे हृदयों का समन्वय हो और ऐश्वर्य का जो तप रूप है, उससे तुम्हें समन्वित करता हूँ।

Eng. Tr.—Let there be harmony of your mind and heart. I confer upon you the pious form of prosperity.

अनुशीलन—इस मंत्र में हृदय और मन के समन्वय का उल्लेख किया गया है। इसका फल बताया गया है—पवित्र ऐश्वर्य की प्राप्ति।

मानव शरीर में हृदय का बहुत महत्त्व है। यह न केवल रक्त-संचार का आधार है, अपितु स्नेह, ममता, सहानुभूति, संवेदना, राग-द्वेष और संवेगों का आश्रय है। भावात्मक अनुभूति हृदय करता है। सुख-दुःख की अनुभूति हृदय की क्रिया है। मन विचारों का आश्रय है। यह संकल्प-विकल्प करता है और विचारों का आदान-प्रदान करता है।

मंत्र में हृदय और मन की एकरूपता तथा समन्वय पर बल दिया गया है। हृदय और मन के समन्वय से संकल्पों और विचारों में सहानुभूति, स्नेह, ममता आदि गुणों का समन्वय होगा। इसका फल यह होगा कि विचारों में शुद्धता होगी। विचारों की शुद्धि ही ऐश्वर्य का शुद्ध या तपोमय रूप है। यह तपोमय रूप ही शुद्ध ऐश्वर्य का साधन बनता है।

टिप्पणी—(१) **संज्ञपनम्**—समन्वय, एकता, सांमनस्य। सम् + ज्ञप् + ल्युट् (अन)। (२) **श्रान्तम्**—श्रमजन्य तप। श्रम् + क्त (त)। (३) **संज्ञपयामि**—समन्वित करता हूँ। सम् + ज्ञप् (जानना, चुरादि) + स्वार्थ में णिच् + लट् उ० १।

५०. मन और हृदय में समन्वय हो

यो वः शुष्मो हृदयेष्वन्तः
आकूतिर्या वो मनसि प्रविष्टा।
तान् सीवयामि हविषा घृतेन
मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥

अथर्व० ६.७३.२

अन्वय—यः शुष्मः वः हृदयेषु अन्तः, या आकूतिः वः मनसि प्रविष्टा, तान् हविषा घृतेन सीवयामि। हे सजाताः! वः रमतिः मयि अस्तु।

शब्दार्थ—(यः) जो, (शुष्मः) बल, (वः) तुम्हारे, (हृदयेषु अन्तः) हृदयों के अन्दर है। (या) जो, (आकूतिः) संकल्प, विचार, (वः) तुम्हारे, (मनसि) मन में, (प्रविष्टा) घुसा हुआ है, विद्यमान है, (तान्) उनको, बल और विचारों को, (हविषा) हवि से, सामग्री से, (घृतेन) घी से, (सीवयामि) सीता हूँ, मिलाता हूँ,। (हे सजाताः!) हे समान कुल में उत्पन्न लोगो!, (वः) तुम्हारा, (रमतिः) अनुकूल व्यवहार, (मयि) मेरे प्रति, (अस्तु) होवे।

हिन्दी अर्थ—तुम्हारे हृदयों में जो बल है और तुम्हारे मन में जो संकल्प व्याप्त हैं, उनको मैं सामग्री और घी से (अर्थात् यज्ञ द्वारा) समन्वित करता हूँ। हे सगोत्र लोगो! तुम्हारा मेरे प्रति अनुकूल व्यवहार हो।

Eng. Tr.—O Relatives! Whatever strength is in your hearts and whatever thoughts are in your mind, I join them by mean of oblations and ghee (i. e. by means of sacrifice). Let your confidence be in me.

अनुशीलन—इस मंत्र में हृदय और मन के गुणों का वर्णन करते हुए उनके समन्वित होने का वर्णन किया गया है। जहाँ पर इन दोनों का समन्वय होता है, वहाँ विश्वासपात्रता होती है।

मंत्र में हृदय में शक्ति और ऊर्जा की सत्ता बताई गई है। हृदय की सशक्तता कार्यों में उत्साह और वेग का संचार करती है। यह उदासीनता, निरपेक्षता, विरति और विफलता के भावों को नष्ट करती है। कार्यसिद्धि में असफलता या विफलता (Frustration) के विचार तथा आन्तरिक द्वन्द्व (Conflicts) की सत्ता बाधक होते हैं। सशक्त हृदय इन कुंठाओं और द्वन्द्वों के भावों को नष्ट करता है।

दृढ संकल्प (Determination) का भाव मन देता है। जहाँ दृढ संकल्प या विचार है, वहाँ कार्य की सिद्धि अविलम्ब होती है। अतएव मंत्र में ऊर्जस्वी हृदय और शुद्ध संकल्प वाले मन को सीकर एक बनाने का आदेश है।

दोनों के समन्वय का परिणाम यह होता है कि इन गुणों से युक्त व्यक्ति समाज में विश्वसनीय और आदरणीय होता है। उसे नेतृत्व प्रदान किया जाता है और वह अन्य लोगों का विश्वास प्राप्त करके उनका मार्ग-दर्शन करता है।

टिप्पणी—(१) **प्रविष्टा**—घुसी है, विद्यमान है। प्र + विश् (प्रवेश करना, तुदादि) + क्त + टाप्। (२) **सीवयामि**—सीता हूँ, मिलाता हूँ। सीव् (सीना, दिवादि) + णिच् + लट् उ० १। (३) **रमतिः**—प्रेम, विश्वास, अनुकूलता।

५१. मन और कर्म में समन्वय हो

सं वः पृच्यन्तां तन्वः, सं मनांसि समु व्रता।
सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः सं वो अजीगमत्॥

अथर्व० ६.७४.१

अन्वय—वः तन्वः सं पृच्यन्ताम्, मनांसि सं (पृच्यन्ताम्), उ व्रता सं (पृच्यन्ताम्)। अयं ब्रह्मणस्पतिः वः सम् (अजीगमत्), भगः वः सम् (अजीगमत्)।

शब्दार्थ—(वः) तुम्हारे, (तन्वः) शरीर, (सं पृच्यन्ताम्) मिले हुए हों। (मनांसि) तुम्हारे मन, (सं पृच्यन्ताम्) मिले हुए हों। (उ) और,

६

(व्रता) कर्म, (सं पृच्यन्ताम्) समन्वित हों। (अयम्) यह, (ब्रह्मणस्पतिः) वेदज्ञान का स्वामी परमात्मा, (वः) तुम्हें, (सम् अजीगमत्) समन्वित या समान मन वाला बनावे। (भगः) ऐश्वर्य का देवता भी, (वः) तुम्हें, (सम् अजीगमत्) संगठित करे।

हिन्दी अर्थ—**तुम्हारे शरीर, मन और कर्म मिले हुए हों। ज्ञान का अधिपति परमात्मा तुम्हें समान मन वाला करे। ऐश्वर्य का स्वामी भी तुम्हें संगठित करे।**

Eng. Tr.—Let your bodies, minds and actions be harmonised. May the Lord of knowledge make you united. May the lord of wealth make you associated.

अनुशीलन—इस मंत्र में ज्ञान और कर्म की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का विश्लेषण किया गया है। शरीरस्थ आँख नाक कान आदि ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा विविध संवेदनाओं को ग्रहण किया जाता है। मन के द्वारा इन गृहीत संवेदनाओं का प्रत्यक्षीकरण किया जाता है। बुद्धि के द्वारा उस विषय में कर्तव्याकर्तव्य एवं हेय और उपादेय का निर्णय किया जाता है। बुद्धि के आदेशानुसार मन ज्ञानेन्द्रियों को कर्म की प्रेरणा देता है। इस प्रेरणा के अनुसार ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां कर्म में प्रवृत्त होती हैं।

मंत्र में ज्ञान, मन और कर्म में समन्वय पर बल दिया गया है। जहाँ पर इन तीनों का ठीक समन्वय होता है, वहाँ ऐश्वर्य की सिद्धि होती है। जहाँ इन तीनों के समन्वय का अभाव होता है, वहाँ अनिष्ट या अनर्थ होता है।

संस्कृत में सुभाषित है कि मनुष्य जो मन से सोचता है, तदनुसार उसकी वाणी होती है। वह जो वचन कहता है, तदनुसार आचरण करता है। जैसा आचरण करता है, वैसा ही मनुष्य बन जाता है। अतः चिन्तन और व्यक्तित्व-निर्माण का साक्षात् संबन्ध है।

यन्मनसा ध्यायति, तद् वाचा वदति, यद् वाचा वदति, तत् कर्मणा करोति, यत् कर्मणा करोति, तदभिसंपद्यते।

टिप्पणी—(१) सं पृच्यन्ताम् = मिलें। सं+पृच् (मिलना, रुधादि) + कर्मवाच्य लोट् प्र० ३। (२) सम् अजीगमत् = मिलावे, संगठित करे। सम् + गम् (मिलना, भ्वादि) + णिच् + लुङ् प्र० १।

५२. मन और कर्म समान हों

सं वो मनांसि सं व्रता, समाकूतीर्नमामसि।
अमी ये विव्रता स्थन, तान् वः सं नमयामसि॥

अथर्व० ३.८.५; ६.९४.१

अन्वय—वः मनांसि सं नमामसि, व्रता सं (नमामसि), आकूतीः सं (नमामसि)। अमी ये विव्रताः स्थन, तान् वः सं नमयामसि।

शब्दार्थ—(वः) तुम्हारे, (मनांसि) मनों को, (सं नमामसि) एक प्रकार के भावों से युक्त करते हैं, झुकाते हैं। (व्रता) तुम्हारे कर्मों को, (सं नमामसि) एक भाव से युक्त करते हैं। (आकूतीः) तुम्हारे विचारों या संकल्पों को, (सं नमामसि) एक प्रकार के भावों से युक्त करते हैं। (अमी ये) ये जो, (विव्रताः) विरुद्ध कर्मों वाले, (स्थन) हैं, (तान् वः) उन तुम सभी को, (सं नमयामसि) एक विचार की ओर झुकाते हैं, अर्थात् एक प्रकार के कर्म वाला बनाते हैं।

हिन्दी अर्थ—हम तुम्हारे मन को, तुम्हारे कर्मों को और तुम्हारे विचारों को एक प्रकार के भाव वाला बनाते हैं। जो विपरीत कर्मों वाले व्यक्ति हैं, उन्हें हम झुकाते हैं (अर्थात् एक प्रकार के कर्म वाले बनाते हैं)।

Eng. Tr.—We make your minds, actions and thoughts uniform. We bring the evil-doers to the right path.

अनुशीलन—इस मंत्र में समाज मनोविज्ञान के कुछ तत्त्वों का निर्देश है। समाज को सुसंगठित कैसे कर सकते हैं ? समाज को असंगठित करने वाले कौन से तत्त्व हैं और उनको कैसे अपने वश में ला सकते हैं ?

समाज की एकता के लिए तीन तत्त्वों की आवश्यकता है—१. समान विचार, २. समान कर्म, ३. समान लक्ष्य । जब मन एक होंगे तो विचार भी एक होंगे। मानसिक एकता भावों और विचारों की एकता को लाती है। विचारों की एकता तभी सफल होगी, जब उसके अनुरूप कार्य किया जाए। मानसिक एकता और कार्य की एकता तभी संभव है, जब लक्ष्य एक हो। समाज का लक्ष्य है—समाज की सुख-समृद्धि और शान्ति। इसके लिए ही मन्त्र में बताया गया है कि हमारे मन, कर्म और विचार समान हों। यह समान-भावना केवल सद्विचार से आ सकती है। जब एक-दूसरे के हित-चिन्तन की भावना होगी, तभी सद्विचार उदय होंगे और तभी सब मिलकर समाज के उत्थान के लिए प्रयत्नशील होंगे।

मन्त्र का कथन है कि कुछ तत्त्व ऐसे हैं, जो विपरीत कर्म करते हैं, विपरीत आचरण करते हैं। इनको **'विव्रताः'** कहा है। ये तत्त्व सदा काम बिगाड़ते हैं। इनको सुधारने का ढंग है— **'सं नमयामसि'** झुकाना, मोड़ना और कठोर दंड से रास्ते पर लाना। कुकर्मियों को विचार-परिवर्तन से, कठोर दंड से, सामाजिक अनुशासन और बहिष्कार से वश में लाया जा सकता है।

टिप्पणी—(१) **व्रता**—व्रतानि, कर्मों को। व्रत + प्र० ३। व्रतानि का संक्षिप्त रूप व्रता है। (२) **आकूतीः**—विचारों को, संकल्पों को। आकूति + प्र० ३। (३) **सं नमामसि**—अच्छे प्रकार से झुकाते हैं, अर्थात् एक प्रकार के भाव वाला बनाते हैं। नम् (झुकना, भ्वादि, पर०) + लट् उ० ३। नमामः को नमामसि, अन्त में इ का आगम। (४) **विव्रताः**—विपरीत कर्म वाले। वि—विपरीत, व्रत—कर्म। (५) **स्थन**—हैं। अस् (होना, अदादि) + लोट् म० ३। स्त के स्थान पर स्थन है। (६) **सं नमयामसि**—झुकाते हैं। सं + नम् (झुकना, भ्वादि, पर०) + णिच् + लट् उ० ३। अन्त में इ का आगम। एक प्रकार के कर्म वाला बनाते हैं।

५३. सांमनस्य से सद्भाव

संज्ञानं: नः स्वेभि:, संज्ञानमरणेभि: ।
संज्ञानमश्विना युवम्, इहास्मासु नि यच्छतम् ।।

अथर्व० ७.५२.१

अन्वय—स्वेभि: नः संज्ञानम्, अरणेभि: (नः) संज्ञानम् । हे अश्विना ! युवम् इह अस्मासु संज्ञानं नि यच्छतम् ।

शब्दार्थ—(स्वेभि:) आत्मीय जनों से, (नः) हमारा, (संज्ञानम्) ऐकमत्य हो । (अरणेभि:) परदेशी या विदेशी लोगों से, (नः संज्ञानम्) हमारा ऐकमत्य हो । (हे अश्विना) हे अश्विनी देवो !, (युवम्) तुम दोनों, (इह) यहाँ, (अस्मासु) हमारे अन्दर, (संज्ञानम्) ऐकमत्य, सांमनस्य, सद्भाव, (नि) निश्चय से, (यच्छतम्) दो ।

हिन्दी अर्थ—हमारा आत्मीय जनों से और विदेशी जनों से ऐकमत्य स्थापित हो । हे अश्विनी देवो ! तुम दोनों हमारे अन्दर सांमनस्य स्थापित करो ।

Eng. Tr.—May we have concord with the intimately known persons and foreigners alike. O Ashvin Gods ! May both of you bless us with harmony.

अनुशीलन—इस मंत्र में संज्ञान की प्रार्थना की गई है । वेदों में संज्ञान का बहुत महत्त्व वर्णन किया गया है । संज्ञान क्या है ? इसकी क्या उपयोगिता है ? समाज मनोविज्ञान में संज्ञान का बहुत महत्त्व है ।

संज्ञान का अर्थ है—सम्यक् ज्ञान, सम्यक् बुद्धि । सम्यक् ज्ञान से अभिप्राय है—ऐकमत्य, संगठन, सांमनस्य और सौमनस्य । समन्वय की भावना, मिलकर काम करने की भावना, दूसरों से सद्भाव की स्थापना, दूसरों से एकात्मता की अनुभूति संज्ञान है । संज्ञान से ही समाज और संगठन बनता है । संज्ञान की उपयोगिता है—सामाजिक संगठन, सामाजिक उद्बोधन और सामाजिक विकास ।

संज्ञान से सहानुभूति, दया, परोपकार, ममता और एकात्मता की भावना उद्बुद्ध होती है। अतएव मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि हम अपने और पराए दोनों से एकात्मता स्थापित करें। यह संज्ञान संगठन के रूप में परिवर्तित होकर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समृद्धि का साधन होता है।

टिप्पणी—(१) **संज्ञानम्**—ऐकमत्य, हार्दिक एकता, सांमनस्य। (२) **अरणेभिः**—विदेशी या अपरिचित। (३) **यच्छतम्**—दो। यम् (यच्छ्, भ्वादि) + लोट् म० २।

५४. इच्छाशक्ति सौभाग्यदेवी

आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे
चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु।
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु
विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम्॥

अथर्व० १९.४.२

अन्वय—सुभगाम् आकूतिं देवीं पुरः दधे। चित्तस्य माता नः सुहवा अस्तु। याम् आशाम् एमि, सा मे केवली अस्तु। मनसि प्रविष्टाम् एनां विदेयम्।

शब्दार्थ—(सुभगाम्) सौभाग्यशालिनी, (आकूतिम्) संकल्पशक्ति, इच्छाशक्तिरूपी, (देवीम्) देवी को, (पुरः) सामने, आगे, (दधे) रखता हूँ। (चित्तस्य) वह चित्त या मन की, (माता) माता, जननी, (नः) हमारे लिए (सुहवा) सरलता से आह्वान के योग्य, (अस्तु) होवे। (याम्) जिस, (आशाम्) आशा या मनोरथ को लेकर, (एमि) जाता हूँ, (सा) वह आशा, (मे) मेरी, (केवली) अकेली, असाधारण, केवल मेरे लिए ही, (अस्तु) होवे। (मनसि) मन में, (प्रविष्टाम्) प्रविष्ट, (एनाम्) इसको, इस आशा को, (विदेयम्) प्राप्त करूँ, पाऊँ।

हिन्दी अर्थ—सौभाग्यशालिनी इच्छाशक्तिरूपी देवी को मैं आगे रखता हूँ (पुरोहित बनाता हूँ)। यह चित्त की जननी मेरे लिए सरलता से आह्वान के योग्य हो। मैं जिस आशा को लेकर उसके पास जाता हूँ, वह मेरी आशा असाधारण हो। मैं अपने मन में प्रविष्ट इस आशा को प्राप्त करूँ।

Eng. Tr.—I put forth the fortunate goddess, Will-power, before me. She, the mother of mind, may be accessible to us. With whatever ambition I approach her, may that one be accepted by her. May I attain that sincere desire.

अनुशीलन—इस मन्त्र में आकूति शब्द के द्वारा इच्छाशक्ति (Will-power) का वर्णन किया गया है। इस इच्छाशक्ति को सौभाग्य की देवी कहा गया है। इसका अभिप्राय यह है कि यह मानव का निर्माण करती है। इच्छाशक्ति संवेगों को जन्म देती है। संवेग के आधार पर प्रवृत्तियाँ होती हैं। ये संवेग उच्च मध्य और निम्न होते हैं। उच्च संवेग शीघ्र ही कार्य की सिद्धि करते हैं और सफलता प्रदान करते हैं।

संवेगों की तीव्रता आदि इच्छाशक्ति पर निर्भर है। इच्छाशक्ति मन की प्रबल प्रक्रिया है। अतः इसे मन में प्रविष्ट कहा गया है। इच्छाशक्ति को चित्त या चिन्तन की माता बताया गया है। इच्छाशक्ति विचारों को जन्म देती है, अतः उनकी माता है। इच्छाशक्ति प्रेरणा का स्रोत है, अतः यह सौभाग्य या श्रीवृद्धि की मूलस्रोत है। मन्त्र में इसीलिए कहा गया है कि केवल इसका आश्रय लेकर अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति करता हूँ।

टिप्पणी—(१) **पुरः दधे**—आगे रखता हूँ। पुरः + धा (रखना, जुहोत्यादि) + लिट् प्र० १। पुरः + धा से पुरोहित बनता है। (२) **एमि**—जाता हूँ। इ (जाना, अदादि) + लट् उ० १। (३) **विदेयम्**—पाऊँ। विद् (पाना, तुदादि) + विधिलिङ् उ० १।

५५. इच्छाशक्ति ऐश्वर्यदात्री

आकूत्या नो बृहस्पते, आकूत्या न उपा गहि।
अथो भगस्य नो धेहि-अथो नः सुहवो भव॥

अथर्व० १९.४.३

अन्वय—हे बृहस्पते ! आकूत्या नः उपागहि, आकूत्या नः उपागहि। अथो भगस्य न. धेहि। अथो नः सुहवः भव।

शब्दार्थ—(हे बृहस्पते !) हे ज्ञान के अधिपति परमात्मन् !, (आकूत्या) इच्छाशक्ति या संकल्पशक्ति के साथ, (नः) हमारे, (उप आ गहि) पास आवो। (आकूत्या) इच्छाशक्ति के साथ, (नः उप आ गहि) हमारे पास आवो। (अथो) और, (भगस्य) ऐश्वर्य को, (नः) हमें, (धेहि) दो, रखो। (अथो) और, (नः) हमारे लिए, (सुहवः) सरलता से पुकारने योग्य, (भव) होओ।

हिन्दी अर्थ—हे ज्ञान के अधिपति परमात्मन् ! तुम प्रबल इच्छाशक्ति के साथ हमारे पास आवो। हमें ऐश्वर्य दो और सरलता से प्राप्य होओ।

Eng. Tr.—O Lord of Knowledge ! May you Come to us with strong will-power. May you grant wealth to us and be accessible to us.

अनुशीलन—इस मंत्र में बृहस्पति को संबोधित करते हुए कहा गया है कि वह आकूति या इच्छाशक्ति के साथ आवे। बृहस्पति ज्ञान का देवता है। ज्ञान इच्छाशक्ति का मूल है। ज्ञान इच्छाशक्ति देता है और इच्छाशक्ति सभी प्रकार की समृद्धियों के लिए प्रेरणा देती है। इस प्रकार समृद्धि का मूल इच्छाशक्ति है।

इच्छाशक्ति वह शक्तिपुंज है, जो मानव को स्फूर्ति, चेतना, ऊर्जा और दृढ निश्चय प्रदान करती है। मानव का दृढ निश्चय उसे अपने कार्य की सफलता की ओर अग्रसर करता है। जहाँ दृढ निश्चय है, वहाँ सफलता है; जहाँ अस्थिरता

हैं, वहाँ असफलता। इसलिए संस्कृत में सुभाषित है कि कार्य की सफलता दृढ निश्चय और आत्मबल पर निर्भर है, न कि साधनों पर।

'क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे।'

टिप्पणी—(१) उप आ गहि—आवो। उप+आ+गम् (पास आना, भ्वादि)+लोट् म० १। (२) धेहि—रखो। धा (रखना, जुहोत्यादि) +लोट् म० १।

५६. इच्छाशक्ति कामधेनु है

सा ते काम दुहिता धेनुरुच्यते,
यामाहुर्वाचं कवयो विराजम्।
तया सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम,
पर्येनान् प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु॥

अथर्व० ९.२.५

अन्वय—हे काम! सा ते दुहिता धेनुः उच्यते, यां कवयः विराजं वाचम् आहुः। ये मम (सपत्नाः) तया (तान्) सपत्नान् परि वृङ्ग्धि, एनान् प्राणः पशवः जीवनं परि वृणक्तु।

शब्दार्थ—(हे काम!) हे इच्छाशक्ति या संकल्पशक्ति!, (सा) वह, (ते) तेरी, (दुहिता) पुत्री, (धेनुः) कामधेनु, (उच्यते) कही जाती है। (याम्) जिसको, (कवयः) क्रान्तदर्शी विद्वान् लोग, (विराजं वाचम्) विराट् वाणी, (आहुः) कहते हैं। (ये मम सपत्नाः) जो मेरे शत्रु हैं, (तया) उस वाणी से, (तान् सपत्नान्) उन शत्रुओं को, (परि वृङ्ग्धि) नष्ट कर दे। (एनान्) इन शत्रुओं को (प्राणः) प्राणशक्ति, (पशवः) पशुधन, (जीवनम्) जीवन, (परि वृणक्तु) पूर्णतया छोड़ दे।

हिन्दी अर्थ—हे इच्छाशक्ति! उस तुम्हारी पुत्री को कामधेनु कहते हैं, जिसको विद्वान् लोग विराट् वाणी कहते हैं। उस वाणी से मेरे शत्रुओं को नष्ट करो। इन शत्रुओं को प्राणशक्ति, पशुधन और जीवन पूर्णतया छोड़ दे।

Eng. Tr.—O Will-power ! Your daughter is called Kamadhenu(i. e. a cow yielding all desires), whom the sages call the supreme speech. By that speech may you destroy all my enemies. Let the vital airs, animals and life abandon them totally.

अनुशीलन—इस मंत्र में काम शब्द से इच्छाशक्ति अभिप्रेत है। इच्छाशक्ति वाणी पर नियन्त्रण रखती है, अतः उसे वाक्तत्त्व की माता और वाणी को काम की पुत्री कहा गया है। वाणी कामधेनु है। इच्छाशक्ति इसका संचालन करती है, अतः वह भी कामधेनु या कामधेनु की माता है।

तांड्य ब्राह्मण में भी यह भाव दिया गया है कि वाणी से पहले मन में गति होती है और मन जैसा सोचता है, उसी प्रकार वाणी से अभिव्यक्ति होती है। वाणी का संचालक मन है। जिस प्रकार के भाव मन में उठते हैं, उसी प्रकार वाणी का स्वरूप होता जाता है। शुभ विचार मधुर वाणी प्रवाहित करते हैं और अशुभ विचार अशुभ वाणी।

मनो हि पूर्वं वाचः, यद् हि मनसाभिगच्छति तद् वाचा वदति।

तांड्य ब्रा० ११.१.३

इच्छाशक्ति मानव की सभी कामनाओं की पूर्ण करती है, अतः वह कामधेनु है। इच्छाशक्ति के बल पर ही शत्रुओं पर विजय प्राप्त की जाती है। शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना तथा अपने मनोरथों को सफल करना इच्छाशक्ति की प्रबलता पर निर्भर है।

टिप्पणी—(१) **धेनुः**—कामधेनु, सभी इच्छाओं को पूरा करने वाली। (२) **उच्यते**—कही जाती है। ब्रू (वच्, कहना, अदादि) + कर्मवाच्य लट् प्र० १। (३) **विराजं वाचम्**—विराट् वाक् शक्ति। (४) **परि वृङ्ग्धि**—परि + वृज् (छोड़ना, नष्ट करना, रुधादि) + लोट् म० १। (५) **परि वृणक्तु**—छोड़ दे। परि + वृज् (छोड़ना) + लोट् प्र० १।

५७. इच्छाशक्ति प्रबल संचालक है

अध्यक्षो वाजी मम काम उग्रः
कृणोतु मह्यमसपत्नमेव ।
विश्वे देवा मम नाथं भवन्तु
सर्वे देवा हवमा यन्तु म इमम् ॥

अथर्व० ९.२.७

अन्वय—उग्रः वाजी कामः मम अध्यक्षः, मह्यम् असपत्नम् एव कृणोतु । विश्वे देवाः मम नाथं भवन्तु । सर्वे देवाः मे इमं हवम् आ यन्तु ।

शब्दार्थ—(उग्रः) प्रतापी, तेजस्वी, (वाजी) बलवान्, (कामः) संकल्प, इच्छाशक्ति, (मम) मेरा, (अध्यक्षः) मेरा अधिष्ठाता या मार्गदर्शक है । (मह्यम्) मुझे, (असपत्नम् एव) शत्रुरहित ही, (कृणोतु) करे । (विश्वे देवाः) सभी देवता, (मम) मेरे, (नाथम्) नाथ, स्वामी, रक्षक, (भवन्तु) होवें । (सर्वे देवाः) सभी देवता, (मे) मेरे, (इमम्) इस, (हवम्) हवन में या आह्वान् पर, (आ यन्तु) आवें ।

हिन्दी अर्थ—प्रतापी एवं बलवान् इच्छाशक्ति मेरा संचालक है । वह मुझे शत्रुरहित करे । सभी देवता मेरे रक्षक हों । सभी देव मेरे इस यज्ञ में आवें ।

Eng. Tr.—Will—power, the terrible and vigorous one, is my guiding force. May it make me foe-less. Let all the deities be my lords. May all the gods come to my sacrifice.

अनुशीलन—इस मंत्र में इच्छाशक्ति को जीवन का संचालक और प्रबल शक्ति बताया गया है । मानव-जीवन इच्छा-शक्ति के बल पर उन्नति, विकास एवं प्रगति के पथ पर अधिष्ठित होता है, अतः मनुष्य के जीवन का कर्तृत्व इच्छाशक्ति पर निर्भर है ।

इच्छाशक्ति में प्रेरणा और उद्बोधन की शक्ति है, अतः वह जीवन का अध्यक्ष, संचालक या निदेशक है। उन्नति के शिखर पर अधिष्ठित करना इच्छाशक्ति पर निर्भर है। इच्छाशक्ति के साथ देवों का संबन्ध है। शुभ विचार देवों और दैवी शक्तियों को आकृष्ट करते हैं, अतः मंत्र में देवों को रक्षक होने की प्रार्थना की गई है।

जहाँ इच्छाशक्ति के द्वारा देवों का आह्वान किया जाता है, वहाँ पाप, दुर्भावना, दुर्व्यसनों आदि का नाश होता है। अतः मंत्र में इच्छाशक्ति के द्वारा काम क्रोधादि-रूप शत्रुओं के नाश की कामना की गई है।

टिप्पणी—(१) **कृणोतु**—करे। कृ (करना, स्वादि)+लोट् प्र० १। (२) **आ यन्तु**—आवें। आ + इ (आना, अदादि) + लोट् प्र० ३।

५८. इच्छाशक्ति अभेद्य कवच है

यत् ते काम शर्म त्रिवरूथमुद्भु
ब्रह्म वर्म विततमनतिव्याध्यं कृतम्।
तेन सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम
पर्येनान् प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु ॥

अथर्व० ९.२.१६

अन्वय—हे काम ! यत् ते शर्म त्रिवरूथम्, उद्भु, विततं ब्रह्म वर्म, अनतिव्याध्यं कृतम्, तेन मम सपत्नान् परिवृङ्ग्धि, एनान् प्राणः पशवः जीवनं परि वृणक्तु।

शब्दार्थ—(हे काम !) हे संकल्पशक्ति या इच्छाशक्ति !, (यत्) जो, (ते) तेरा, (शर्म) कल्याण, संरक्षण, आश्रय, (त्रिवरूथम्) तीन प्रकार से रक्षक, (उद्भु) उत्कृष्ट शक्ति वाला, उन्नतिशील है। (विततम्) विस्तृत, व्यापक, (ब्रह्म वर्म) ज्ञानरूपी कवच है। (अनतिव्याध्यम्) शस्त्रादि से अभेद्य, (कृतम्) बनाया हुआ है। (तेन) उससे, (मम) मेरे, (सपत्नान्) शत्रुओं

को, (परि वृङ्ग्धि) नष्ट करो, दूर हटावो। (एनान्) इन शत्रुओं को, (प्राणः) प्राणशक्ति, (पशवः) पशुधन, (जीवनम्) जीवन, (परि वृणक्तु) पूर्णतया छोड़ दे।

हिन्दी अर्थ--हे संकल्पशक्ति ! तेरा संरक्षण उत्कृष्ट शक्ति वाला है और तीन प्रकार से रक्षक है। यह ज्ञानरूपी कवच है और शस्त्रादि से अभेद्य है। इसके द्वारा मेरे शत्रुओं को नष्ट करो। इन शत्रुओं को प्राणशक्ति, पशुधन और जीवन छोड़ दे।

Eng. Tr.—O Will-Power! Your blessing protects from three sides. It is ever-progressing. It is an extensive armour in the form of knowledge and it is made invulnerable. By that blessing may you destroy all my enemies. Let the vital airs, animals and longevity abandon them totally.

अनुशीलन—इस मंत्र में इच्छा-शक्ति को अभेद्य कवच बताया गया है। इच्छाशक्ति के पास ब्रह्म या ज्ञानरूपी कवच है। यह कवच तीनों प्रकार की विपत्तियों से रक्षा करता है। यहाँ तीन प्रकार की रक्षा से अभिप्राय है—आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक रक्षा। यह शारीरिक और मानसिक सभी कष्टों को दूर करती है, अतः इसे उद्भु अर्थात् विशेष शक्तियुक्त कहा गया है।

मन की शक्ति अपरिमित है। यह जीवन में अजेयता, आत्मनिर्भरता और निर्भयता को जन्म देती है। इसके पीछे ब्रह्म अर्थात् ज्ञान या विवेक की शक्ति है। यह विपत्तियों को दूर करती है, जीवन का मार्ग प्रशस्त करती है और मानव में अघर्षणीयता एवं अजेयता का भाव प्रबुद्ध करती है। इस शक्ति का आश्रय लेकर सभी प्रकार के शत्रुओं पर विजय प्राप्त की जाती है।

टिप्पणी—(१) त्रिवरूथम्—त्रि–तीन प्रकार से, वरूथम्–रक्षक। (२) अनतिव्याध्यम्—अन्–नहीं, अतिव्याध्यम्–शस्त्रों से भेद्य। (३) शेष के लिए मंत्र ५६ की टिप्पणी देखें।

५९. इच्छाशक्ति समुद्र से भी महान्

ज्यायान् निमिषतोऽसि तिष्ठतो
ज्यायान् समुद्रादसि काम मन्यो ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महान्-
तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥

अथर्व० १.२.२३

अन्वय—हे काम ! हे मन्यो ! निमिषतः ज्यायान् असि, तिष्ठतः (ज्यायान् असि), समुद्रात् ज्यायान् असि । ततः त्वं ज्यायान् असि, विश्वहा महान् (असि), हे काम ! तस्मै ते इत् नमः कृणोमि ।

शब्दार्थ—(हे काम !) हे संकल्पशक्ति या इच्छाशक्ति, (हे मन्यो !) हे उत्साह !, (निमिषतः) पलक मारने वालों से, चर जगत् से, (ज्यायान् असि) बड़े या बढ़कर हो ।.(तिष्ठतः) स्थावर से, अचर से, (ज्यायान् असि) बढ़कर हो । (समुद्रात्) समुद्र से, (ज्यायान् असि) बढ़कर हो । (ततः) अतएव, (त्वं ज्यायान् असि) तुम बड़े हो, (विश्वहा) सदा, (महान्) बड़े हो । (हे काम !) हे इच्छाशक्ति (तस्मै ते) उस तुमको, (इत्) ही, (नमः) नमस्कार, (कृणोमि) करता हूँ ।

हिन्दी अर्थ—हे इच्छाशक्ति ! हे उत्साह ! तुम चर और अचर जगत् से बढ़कर हो । तुम समुद्र से भी बड़े हो । अतएव तुम बड़े हो, सदा महान् हो । हे इच्छाशक्ति ! (हे काम !) ऐसे तुमको ही मैं नमस्कार करता हूँ ।

Eng. Tr.—O Will-power ! O Zeal ! You are greater than the movable and immovable world. You are greater than the ocean. Therefore you are greater and mighty. O Will-power ! I pay my obeisance to you alone.

अनुशीलन—इस मन्त्र में इच्छाशक्ति के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है । इच्छाशक्ति की विभूतियों का कहीं अन्त नहीं है । चर और अचर जगत् की जितनी

सामर्थ्य है, उससे अधिक काम या इच्छाशक्ति की सामर्थ्य है। समुद्र जिस प्रकार अगाध और महान् है, उसी प्रकार इच्छाशक्ति भी महान् और अपरिमेय है। इच्छाशक्ति क्या नहीं कर सकती है? यह बताना कठिन है। इसकी अनन्तता के विषय में तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि काम या इच्छाशक्ति समुद्र के समान है। जिस प्रकार समुद्र का अन्त नहीं है, उसी प्रकार काम का भी कहीं अन्त नहीं है।

समुद्र इव हि कामः। नैव हि कामस्यान्तोऽस्ति, न समुद्रस्य।

तैत्ति॰ ब्रा. २.२.५.६

व्यक्तित्व (Personality) का विकास इच्छाशक्ति पर निर्भर है। मनुष्य अपनी उन्नति के लिए महत्त्वाकांक्षा का आश्रय लेता है। महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति मानव की इच्छाशक्ति पर निर्भर है। जितना दृढ निश्चय होगा, उतनी ही शीघ्र सफलता प्राप्त होती है। इस प्रकार मनुष्य इच्छाशक्ति के आधार पर अपने व्यक्तित्व का विकास करता है।

टिप्पणी—(१) ज्यायान्—बड़े, अधिक उन्नत। प्रशस्य + ईयस् = ज्यायस् + प्र॰ १। प्रशस्य को ज्य आदेश। (२) कृणोमि—करता हूँ। कृ (करना, स्वादि) + लट् उ॰ १।

६०. इच्छाशक्ति अत्यन्त दुर्लभ

न वै वातश्चन काममाप्नोति
नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमाः।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महान्-
तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि॥

अथर्व॰ ९. २. २४

अन्वय—वै वातः चन कामं न आप्नोति, न अग्निः, (न) सूर्यः, उत न चन्द्रमाः। ततः त्वं ज्यायान् असि, विश्वहा महान् (असि)। हे काम! तस्मै ते इत् नमः कृणोमि।

शब्दार्थ—(वै) वस्तुतः, (वातः चन) वायु भी, (कामम्) काम को, इच्छाशक्ति को, (न) नहीं, (आप्नोति) प्राप्त करता है। (न अग्निः) न अग्नि ही, (न सूर्यः) न सूर्य ही, (उत) और (न चन्द्रमाः) न चन्द्रमा ही। (ततः) अ :, (त्वं ज्यायान् असि) तुम बड़े हो। ।विश्वहा) सदा, (महान् असि) महान् हो। (हे काम !) हे इच्छाशक्ति ! (तस्मै ते इत्) उस तुम को ही, (नमः) नमस्कार, (कृणोमि) करता हूँ।

हिन्दी अर्थ—वायु भी उस काम (इच्छाशक्ति) को नहीं पा सकता है। न अग्नि, न सूर्य और न चन्द्रमा ही उसे पा सकते हैं। अतएव तुम बड़े हो और सदा महान् हो। हे काम ! (हे इच्छाशक्ति !) ऐसे तुमको ही मैं नमस्कार करता हूँ।

Eng. Tr.—Neither wind can find the will-power, nor the fire, nor the sun and not even the moon. Therefore you are greater and mighty. O Will-power ! I pay my obeisance to you alone.

अनुशीलन—इस मन्त्र में वर्णन किया गया है कि काम (कामना या महत्त्वाकांक्षा) की कहीं समाप्ति नहीं है। संसार का कोई तत्त्व अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र आदि उसको पकड़ नहीं सकते हैं। मनुष्य की आकांक्षाओं का कहीं अन्त नहीं है। उनका आदि और अन्त बताना संभव नहीं है, अतएव काम की शक्तियों को दुर्लभ या दुष्प्राप्य बताया गया है।

मानव अपनी अनुभूति और संवेगों के आधार पर भावी जीवन का निर्माण करता है। संवेगों में तीव्रता लाना इच्छाशक्ति का कार्य है। जहाँ जितनी तीव्रता होगी, उतनी ही लक्ष्य के प्रति सांनिध्य होगा। इच्छाशक्ति जीवन-निर्माण की कला है। इस कला को जानने वाला अभूतपूर्व घटनाओं का संयोजन करता है, अलौकिक तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करता है, आध्यात्मिक विभूतियों का साक्षात्कार करता है और नर-जीवन में दिव्यत्व की अनुभूति करता है। इस प्रकार इच्छाशक्ति एक अलौकिक विभूति के रूप में मानव के विद्यमान है। उसका उचित उपयोग और संवर्धन व्यक्तित्व-विकास का आधार है।

टिप्पणी—(१) आप्नोति—पाता है, पा सकता है। आप् (पाना, स्वादि) + लट् प्र० १। (२) शेष के लिए मन्त्र ५९ की टिप्पणी देखें।

६१. इच्छाशक्ति से अभीष्टसिद्धि

यत् काम कामयमाना, इदं कृण्मसि ते हविः।
तन्नः सर्वं समृध्यताम्, अथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा॥

अथर्व० १९.५२.५

अन्वय—हे काम ! यत् कामयमानाः इदं हविः ते कृण्मसि, तत् सर्वं नः सम् ऋध्यताम्। अथ एतस्य हविषः वीहि स्वाहा।

शब्दार्थ—(हे काम)! हे इच्छाशक्ति !, (यत्) जो कुछ, (कामयमानाः) चाहते हुए, (इदं हविः) यह हवि या हव्य, (ते) तेरे लिए, (कृण्मसि) करते हैं, देते हैं, (तत्) वह, (सर्वम्) सब कुछ, (नः) हमारे लिए, (समृध्यताम्) सफल हो, हमें प्राप्त हो। (अथ) और, (एतस्य) इस, (हविषः) हवि को, (वीहि) उपभोग करो, चाहो, स्वीकार करो। (स्वाहा) एतदर्थ आहुति देते हैं।

हिन्दी अर्थ—हे इच्छाशक्ति ! जिस कामना से हम यह हवि तेरे लिए अर्पित करते हैं, वह सब कुछ हमें सिद्ध हो। तुम इस हवि को स्वीकार करो। एतदर्थ हम आहुति देते हैं।

Eng. Tr.—O Will-power! with whatever desire we offer this oblation to you, may that attain full success. May you enjoy this oblation. For that purpose we offer this oblation.

अनुशीलन—इस मंत्र में इच्छाशक्ति को अभीष्ट का साधक बताया गया है। साथ ही कहा गया है कि उसकी तृप्ति के लिए उपयुक्त हवि देते हैं।

इच्छाशक्ति किस प्रकार अभीष्टों को पूर्ण करती है और उसकी हवि क्या है ? इच्छाशक्ति क्या है ? यह मनोबल का प्रबुद्ध रूप है। मन की सूक्ष्म एवं दिव्य शक्तियों का समूह इच्छाशक्ति है। यह वज्र के तुल्य तीक्ष्ण, तेजोमय और भेदक है। यह बड़े से बड़े विघ्नों को उसी प्रकार उड़ा देती है, जैसे आंधी पत्ते आदि को। यह एक लक्ष्य को समक्ष रखकर अग्रसर होती है। यह एकलक्ष्यता मन की एकाग्रता सूचित करती है। जब लक्ष्य निर्धारित है और तदनुकूल प्रयत्न है, तो अभीष्ट स्वयं पूर्ण होता है।

इच्छाशक्ति के लिए क्या हवि चाहिए ? इसके लिए घी, सामग्री आदि भौतिक वस्तुओं की आवश्यकता नहीं है। यह दिव्य शक्ति है, अतः इसके लिए हृदय की शुद्धता, मन की पवित्रता, विचारों में परिष्कार, भावों में सात्त्विकता और दृढ़ निश्चय, ये दिव्य हवि हैं। इनसे तेजोमयी इच्छाशक्ति उसी प्रकार उद्भूत होती है, जैसे जल के संघर्षण से विद्युत्।

टिप्पणी--(१) **कामयमानाः**--चाहते हुए। कम् (चाहना, भ्वादि)+ स्वार्थ में णिङ्+शानच् (आन)+प्र० ३। (२) **कृण्मसि**-करते हैं, देते हैं। कृ (करना, स्वादि)+लट् उ० ३। मः को मसि। (३) **समृध्यताम्**--संपन्न हो, पूर्ण हो। सम्+ऋध् (सफल होना, स्वादि)+कर्मवाच्य लोट् प्र० १। (४) **वीहि**--चाहो, उपभोग करो। वी (चाहना, अदादि)+लोट् म० १।

६२. विचारशक्ति से श्रेष्ठता

इदमाज्यं घृतवज्जुषाणाः,
कामज्येष्ठा इह मादयध्वम्।
कृण्वन्तो मह्यमसपत्नमेव ॥

अथर्व० ९.२.८

अन्वय--हे कामज्येष्ठाः ! इदं घृतवत् आज्यं जुषाणाः, मह्यम् असपत्नम् एव कृण्वन्तः, इह मादयध्वम्।

शब्दार्थ—(हे कामज्येष्ठाः) हे इच्छाशक्ति या विचारशक्ति को श्रेष्ठ मानने वाले देवो ! (इदम्) इस, (घृतवत्) घृतयुक्त, (आज्यम् हव्य को, (जुषाणाः) सेवन करते हुए, (मह्यम्) मुझको, (असपत्नम्) शत्रुरहित, (एव) ही, (कृण्वन्तः) करते हुए, (इह) यहाँ, (मादयध्वम्) आनन्दित हो ।

हिन्दी अर्थ—हे इच्छाशक्ति को श्रेष्ठ मानने वाले देवो ! इस घृतयुक्त हवि को सेवन करते हुए और मुझको शत्रुरहित करते हुए यहाँ आनन्दित हो ।

Eng. Tr.—O Gods, having will-power as the foremost! Enjoying this oblation, consisting of clarified butter, and making me foe-less, remain pleased here.

अनुशीलन—इस मंत्र में इच्छाशक्ति का महत्त्व वर्णन करते हुए कहा गया है कि देवता इच्छाशक्ति के बल पर ही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हैं। उन्हें 'कामज्येष्ठ' कहा गया है ।

कामज्येष्ठता क्या है ? मनोबल की अधृष्यता को समझते हुए उसका संपोषण और संवर्धन कामज्येष्ठता है । यह मनोबल ही इच्छाशक्ति के रूप में परिणत होता है । देवों का देवत्व क्या है ? इच्छाशक्ति को अपना अमोघ शस्त्र बनाकर, लक्ष्य की एकता निर्णीत कर, सात्त्विक भावों का आश्रय लेना और विचारों की दिव्यता को प्रवाहित करना देवत्व है । मानव भी देव हो सकता है । देवत्व की अनुभूति और उसकी प्राप्ति अपने कर्मों पर निर्भर है । यह स्व-साध्य और स्व-प्राप्य है । इसके लिए विचार-शुद्धिरूपी घृत चाहिए । यदि ऐसे घृत की आहुति दी जाती है तो देवगण स्वयं प्रसन्न होते हैं और हृदय-मन्दिर में विराजमान होते हैं ।

यह देवत्व मानव को अजातशत्रु या अशत्रु बना देता है । प्रेम से प्रेम और घृणा से घृणा का जन्म होता है । जब प्रेम की अनुभूति और प्रेम का प्रसार होगा तो शत्रुत्व की भावना वहाँ नहीं पहुँच सकेगी और जीवन शत्रुहीन होगा ।

टिप्पणी—(१) **जुषाणाः**—सेवन करते हुए । जुष् (सेवन करना, तुदादि) + शानच् (आन) + प्र० ३ । (२) **मादयध्वम्**—आनन्दित हो । मद् (प्रसन्न

होना, दिवादि) + णिच् + लोट् म० ३ । (३) कृण्वन्तः—करते हुए । कृ (करना, स्वादि) + शतृ + प्र० ३ ।

६३. इच्छाशक्ति के वश में सभी देव

बृहस्पतिर्म आकूतिमाङ्गिरसः
प्रति जानातु वाचमेताम् ।
यस्य देवा देवताः संबभूवुः
स सुप्रणीताः कामो अन्वेत्वस्मान् ॥

अथर्व० १९.४.४

अन्वय—आङ्गिरसः बृहस्पतिः मे आकूतिम् एतां वाचं प्रति जानातु । यस्य सुप्रणीताः देवाः देवताः सं बभूवुः । सः कामः अस्मान् अनु एतु ।

शब्दार्थ—(आङ्गिरसः बृहस्पतिः) आग्नेय तत्त्व वाला ज्ञानाधिपति परमात्मा, (मे) मेरी, (आकूतिम्) कामना को, (एतां वाचम्) इस वाणी या प्रार्थना को, (प्रति जानातु) स्वीकार करे । (यस्य) जिससे, (सुप्रणीताः) सन्मार्ग पर लगाए गए, (देवाः) देवगण, (देवताः) देवता, देवियाँ, (सं बभूवुः) उत्पन्न हुए हैं । (स कामः) वह इच्छाशक्तिरूपी देव, (अस्मान्) हमें, (अनु एतु) अनुकूलता से प्राप्त हो ।

हिन्दी अर्थ--आग्नेय तत्त्व वाला ज्ञान का अधिपति परमात्मा मेरी कामना को और मेरी प्रार्थना को स्वीकार करे । सन्मार्ग पर चलाए गए सभी देव और देवता उसी से उत्पन्न हुए हैं । वह इच्छाशक्तिरूपी देव हमें अनुकूलता से प्राप्त हो ।

Eng. Tr.–The fiery God may accept my desire and the prayer. He created the well-guided Gods and Goddesses. May that will-power be favourable to us.

अनुशीलन—इस मंत्र में सभी देवों और देवताओं की उत्पत्ति इच्छाशक्ति से बताई गई है और उस इच्छाशक्ति के लिए प्रार्थना की गई है।

काम या इच्छाशक्ति सभी देवों और देवताओं का जन्मदाता कैसे है ? सृष्टि की रचना ईक्षण शक्ति से हुई है, अतः सभी देवगण ईश्वर की ईक्षण-शक्ति से उद्भूत हैं। मानव-शरीर में भी देव और देवियाँ हैं। ये देव ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और भावनाएँ देवियाँ हैं। इसलिए जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में मानव-शरीर को दैवी परिषद्, दैवी सभा और दैवी संसद् कहा गया है।

चक्षुर्देवः। मनो देवः। गोपथ ब्रा० १.२.११

तं वागेव भूत्वाऽग्निः प्राविशत्........। एषा वै दैवी परिषद्, दैवी सभा, दैवी संसत्। जैमिनीय उप० ब्रा० २.११.१२-१३

इन देवों और दैवी संसद् का जन्मदाता तथा संचालक काम या इच्छाशक्ति है। यह इच्छाशक्ति सभी ज्ञानेन्द्रियों को प्रेरणा देती है, सन्देश देती है और उन्हें उद्बोधित करती है, अतः उसे इनका उत्पत्तिस्थान या स्रष्टा बताया गया है।

इस मंत्र में ज्ञान के अधिपति बृहस्पति को आंगिरस अर्थात् आग्नेय तत्त्व बताया गया है। ज्ञान में प्रबोधकता, स्फूर्ति और शक्तिमत्ता है, अतः उसे आंगिरस कहा गया है। यह आंगिरस बृहस्पति चेतना का संचालक है, अतः चेतना या आकूति के उद्बोधन के लिए बृहस्पति से प्रार्थना की गई है।

टिप्पणी—(१) **आङ्गिरसः**—आग्नेय तत्त्व। अङ्गिरस् (अग्नि) + अण् (अ)। (२) **प्रति जानातु**—जाने, स्वीकार करे। प्रति + ज्ञा (जानना, क्र्यादि) + लोट् प्र० १। (३) **सं बभूवुः**—उत्पन्न हुए। सम् + भू (उत्पन्न होना, भ्वादि) + लिट् प्र० ३। (४) **सुप्रणीताः**—सन्मार्ग पर लाए हुए। सु + प्र + नी (ले जाना) + क्त (त) + प्र० ३। (५) **अनु एतु**—अनुकूलता से आवे, पीछे चले। अनु + इ (जाना, अदादि) + लोट् प्र० १।

६४. इच्छाशक्ति और उत्साह

यन्मन्युर्जायामावहत्, संकल्पस्य गृहादधि ।
क आसं जन्याः के वराः, क उ ज्येष्ठवरोऽभवत् ॥

अथर्व० ११.८.१

अन्वय : यत् मन्युः संकल्पस्य गृहात् अधि जायाम् आ अवहत् । के जन्याः आसन्, के वराः (आसन्), उ कः ज्येष्ठवरः अभवत् ।

शब्दार्थ : (यत्) जब, (मन्युः) उत्साहरूपी आत्मा ने, (संकल्पस्य) संकल्प या इच्छा के, (गृहात् अधि) घर से, (जायाम्) पत्नी को, इच्छा-शक्तिरूपी पत्नी को, (आवहत्) लाया, विवाह करके लाया । (के) कौन लोग, (जन्याः) वधूपक्षीय, (आसन्) थे । (के) कौन, (वराः) वर या वरपक्षीय थे । (उ) और, (कः) कौन, (ज्येष्ठवरः) श्रेष्ठ वर, (अभवत्) था, बना था ।

हिन्दी अर्थ : जब उत्साहरूपी आत्मा संकल्प (विचार, इच्छा) के घर से इच्छाशक्तिरूपी पत्नी को विवाह करके लाया, उस समय कौन वधूपक्षीय और कौन वरपक्षीय व्यक्ति थे तथा कौन प्रमुख वर था ?

Eng. Tr. : When the energetic soul married the will-power, the daughter of thought, who were the members of the bride's party and who were the members of bride-groom's party and who was the chief bride-groom ?

अनुशीलन : इस मंत्र में मन्यु और इच्छाशक्ति के संबन्ध को वैवाहिक संबन्ध के रूप में प्रस्तुत किया गया है । मन्यु चेतन आत्मा या चेतना (Consciousness) है । मन्यु को देव, भग, वरुण, सर्वदेवरूप माना गया है । मन्यु ही ईश्वर या ब्रह्म है ।

मन्युर्भगो मन्युरेवास देवः० । तैत्ति० ब्रा० २.४.१.११

मन्यु का संबन्ध संकल्प (Thinking) से है। वह संकल्प के घर से इच्छा-शक्ति (Willpower) रूपी पत्नी को विवाह करके लाता है। इसका अभिप्राय यह है कि चेतना का संबन्ध संकल्पशक्ति से है और संकल्पशक्ति इच्छाशक्ति को प्रेरित करती है।

मनोविज्ञान ही दृष्टि से इसे कह सकते हैं कि चेतना के तीन रूपों—प्रज्ञा, भावना, संकल्पशक्ति का प्रयत्न, में से संकल्पशक्ति का प्रयत्न (Conation) चेतना का धर्म है। इसके द्वारा इच्छा, प्रयत्न, प्रेरणा, अवरोध, नियंत्रण आदि कार्य होते हैं। चिन्तन (Thinking) प्रेरणा (motivation) का स्रोत है। यह मनुष्यको कार्य में प्रवृत्त करता है।

अथर्ववेद के इस सूक्त में मंत्र २, ३ और ४ में इस विषय को और स्पष्ट किया गया है। आत्मा या ब्रह्म ज्येष्ठ वर है, तप और कर्म उसके सहयोगी हैं। तप से ज्ञान का अभिप्राय है। ज्ञान (Cognition) और कर्म (Conation) आत्मा या चेतना के गुण हैं। ज्ञान अक्षय है, अतः उसे 'अक्षिति' कहते हैं और क्षय या विनश्वरता के आधार पर कर्म को 'क्षिति' कहा गया है।

अक्षितिश्च क्षितिश्च या, अथर्व० ११.८.४

५ ज्ञानेन्द्रियाँ और ५ कर्मेन्द्रियाँ ये १० इन्द्रियाँ ज्ञान के साधन हैं, अतः इन्हें १० देवता कहा गया है। ये संवेदना, प्रत्यक्षीकरण आदि के साधन हैं। ये रूप रस आदि को ग्रहण करते हैं और बुद्धि के आदेशानुसार उन्हें क्रियान्वित करते हैं।

दश साकमजायन्त देवाः। अथर्व० ११.८.३

टिप्पणी—(१) आ अवहत्—विवाह करके लाया। आ + वह्, (लाना, भ्वादि) + लङ् प्र० १। (२) आसन्—थे। अस् (होना, अदादि) + लङ् प्र० ३।

६५. इच्छाशक्ति के रोधक तत्त्व

स्रोको मनोहा खनो निर्दाह
आत्मदूषिस्तनूदूषिः ॥

अथर्व० १६. १ (१). ३

अन्वय : स्रोकः मनोहा खनः निर्दाहः आत्मदूषिः तनूदूषिः ।

शब्दार्थ : (स्रोकः) घातक विचार, पतन की ओर ले जाने वाले विचार, (मनोहा) चिन्तनशक्ति को नष्ट करने वाले विचार, (खनः) खोदने वाला, स्वयं अपनी जड़ खोदने वाले विचार, (निर्दाहः) दाहक या जलाने वाले विचार, ईर्ष्या आदि दाहक तत्त्व, (आत्मदूषिः) आत्मा को या अपने आपको दूषित करने वाले विचार, (तनूदूषिः) शरीर को दूषित करने वाले या सुखाने वाले विचार ।

हिन्दी अर्थ : घातक विचार, चिन्तन शक्ति को नष्ट करने वाले विचार, अपनी जड़ खोदने वाले विचार, दाहक विचार, आत्मा को दूषित करने वाले विचार और शरीर को दूषित करने वाले विचार (इच्छाशक्ति या मनोबल को नष्ट करते हैं) ।

Eng. Tr. : The following are harmful to the Will-power :- 1. inauspicious thoughts; 2. thoughts injurious to mental power; 3. thoughts of demoralization; 4. heart-burning thoughts; 5. thoughts of self-harming; 6. thoughts of destroying the body.

अनुशीलन : इस मंत्र में इच्छाशक्ति के रोधक तत्त्वों का उल्लेख किया गया है । ये कुण्ठाएँ और द्वन्द्व (Frustration & Conflicts) हैं, जो इच्छाशक्ति के प्रवाह को रोक देते हैं । मंत्र में ६ रोधक तत्त्वों का उल्लेख है । ये हैं—

१. स्रोकः—घातक विचार । अशुभ विचार, दुर्भाव, अशिव संकल्प, परपीडनादि के विचार इच्छाशक्ति को नष्ट करते हैं ।

२. मनोहा—मनोबल या इच्छाशक्ति को तोड़ने वाले विचार । कायरता,

भीरुता, अधीरता, अनुत्साह, अस्थिर-चित्तता ये मनुष्य के मनोबल को नष्ट करते हैं। ये सभी दुर्गुण मनोहा हैं।

३. खनः—अपनी जड़ खोदने वाले विचार। हीनता की भावना, दैन्यभाव, असामर्थ्य, निराशावादिता, भाग्यवादिता, असंयम और अनाचार आदि अपनी जड़ खोदने वाले विचार हैं। ये मनोबल को सदा हानि पहुँचाते हैं।

४. निर्दाहः —दाहक विचार। ईर्ष्या, द्वेष, कटुता, क्रोध, दूसरों की उन्नति आदि को सहन न कर सकना, बदले की भावना, असहिष्णुता और असूया आदि दाहक तत्त्व हैं। ये मन की प्रेरक शक्तियों को जलाकर भस्मसात् करते हैं।

५. आत्मदूषिः —अपनी आत्मा को दोष देना, अपने कुकर्मों के लिए परमात्मा को दोष देना, दुर्गुणों और दुर्विचारों के लिए अपनी आत्मा को कोसना, असफल होने पर स्वयं को दोषी बनाकर हतोत्साह होना आदि आत्मदूषक तत्त्व हैं। ये मनोबल को नष्ट करते हैं।

६. तनूदूषिः —शरीर को दूषित करने वाले विचार। शरीर को अनुचित रूप से पीड़ित करना, भोजन-त्याग, अत्यधिक परिश्रम, शोक क्रोध उन्माद आदि के वशीभूत होना, अंगभंग करना आदि तनूदूषि तत्त्व हैं।

ये दोष मनोबल को नष्ट करते हैं, अतः सर्वथा त्याज्य हैं।

टिप्पणी : [१] म्रोकः —घातक, नाशक विचार। म्रुच् [अस्त होना] + घञ् [अ]। [२] मनोहा—मन के नाशक। मनस् + हन् + प्र० १। [३] निर्दाहः —जलाने वाला। निर् + दह् [जलाना] + घञ् [अ]।

६६. शुभ विचारों से दीर्घायु

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँ सस्तनूभि-
र्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥

यजु० २५.२१; ऋग्० १.८९.८; साम० १८७४

अन्वय : यजत्राः देवाः, कर्णेभिः भद्रं शृणुयाम, अक्षभिः भद्रं पश्येम, स्थिरैः अङ्गैः तुष्टुवांसः, तनूभिः देवहितं यत् आयुः (तत्) व्यशेमहि ।

शब्दार्थ : (यजत्राः) हे पूजनीय, (देवाः) देवो, हम, (कर्णेभिः) दोनों कानों से, (भद्रम्) शुभ, मंगलमय, (शृणुयाम) सुनें । (अक्षभिः) आँखों से, (भद्रम्) शुभ वस्तु, (पश्येम) देखें । (स्थिरैः) दृढ़, पुष्ट, (अङ्गैः) अंगों से, (तुष्टुवांसः) स्तुति करते हुए, स्तुतिकर्ता, (तनूभिः) अपने शरीरों से, (देवहितम्) देवों द्वारा निर्धारित या देवों के लिए हितकर, (यत् आयुः) जो आयु है, उसे, (व्यशेमहि) पावें ।

हिन्दी अर्थ : हे पूजनीय देवो ! हम दोनों कानों से शुभ वचन सुनें, दोनों आँखों से शुभ वस्तु देखें, हृष्ट-पुष्ट अंगों से स्तुति करते हुए, शरीर के द्वारा देवों के लिए हितकर दीर्घ आयु प्राप्त करें ।

Eng. Tr. : O Holy Gods ! May we ever hear with our ears auspicious words. May we ever see with our eyes pleasing things. May we attain, simultaneously, good health and prosperous long life.

अनुशीलन : इस मंत्र में व्यक्तित्व-विकास के कुछ साधन बताए गए हैं। प्रत्येक मनुष्य की कामना है कि उसका जीवन पूर्ण सुखी हो, वह पूर्णतया नीरोग

हो और शतायु हो। परन्तु इस इच्छा की पूर्ति के लिए कुछ नियमों का पालन करना अनिवार्य हैं। ये नियम सरल और कठोर दोनों हैं। यदि आपके विचार सुलझे हुए हैं, मन वश में है, इन्द्रियों पर अधिकार है और सात्त्विक भाव जागृत हैं, तो आपको ये नियम सरल लगेंगे। यदि आपकी चित्त-वृत्तियाँ विशृंखल हैं तो ये नियम कठोर लगेंगे। परन्तु इस कठोर अनुशासन का पालन किये बिना सच्चे सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस मंत्र में इन्हीं नियमों का उल्लेख है—(१) कान से अच्छी बातें सुनें। जब अच्छी बातें सुनेंगे, मन प्रसन्न रहेगा, राग-द्वेष का हृदय में स्थान नहीं होगा और जीवन में पवित्रता रहेगी। (२) आँख से अच्छी चीजें देखें। जब हमारी दृष्टि में कुवासना या दूषित मनोवृत्ति नहीं होगी तो हमें सब मित्र, सहयोगी और प्रिय दिखाई देंगे। इससे घृणा, कटुता, मात्सर्य और मनोमालिन्य को अवसर नहीं मिलेगा। इन दोनों नियमों के पालन से संयम की पुष्टि होगी, शरीर स्वस्थ रहेगा, मन प्रसन्न रहेगा। जब शरीर स्वस्थ होगा और मन प्रसन्न रहेगा तो दीर्घ आयु स्वयं प्राप्त होगी।

टिप्पणी—[१] **कर्णेभिः**—कानों से। कर्ण + तृ० ३, द्विवचन के अर्थ में बहुवचन है। [२] **शृणुयाम**—सुनें। श्रु + विधिलिङ् उ० ३। [३] **पश्येम**—देखें। दृश् + विधिलिङ् उ० ३। [४] **अक्षभिः**—आँखों से। अक्षिभिः के स्थान पर अक्षभिः है। द्विवचन के स्थान पर बहुवचन है। [५] **यजत्राः**—यजनीय, पूजनीय। [६] **तुष्टुवांसः**—जिन्होंने स्तुति की है। स्तुतिकर्ता। स्तु + लिट्—क्वसु [वस्]=तुष्टुवस् + प्रथमा बहु०। [७] **व्यशेमहि**—पावें। वि + अश् [पाना] + विधिलिङ् उ० ३। [८] **देवहितम्**—देवों के लिए हितकर या देवों के द्वारा निर्धारित। हित—धा + क्त [त]।

६७. शुभ विचारों से समृद्धि

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतो-
ऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्-
अप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥

ऋग् १.८९.१; यजु० २५. १४

अन्वय : भद्राः अदब्धासः अपरीतासः उद्भिदः क्रतवः नः विश्वतः आ यन्तु । यथा अप्रायुवः रक्षितारः देवाः दिवे दिवे सदम् इत् नः वृधे असन् ।

शब्दार्थ : (भद्राः) शुभ, कल्याणकारी, (अदब्धासः) अक्षत, निर्विघ्न, (अपरीतासः) अबाध, अप्रतिहत, (उद्भिदः) शुभ फलप्रद, उन्नतिकारक, (क्रतवः) विचार, संकल्प, (नः) हमें, (विश्वतः) चारों ओर से, (आ यन्तु) आवें, प्राप्त होवें । (यथा) जिस प्रकार से, (अप्रायुवः) आलस्यरहित, चुस्त, (रक्षितारः) रक्षा करने वाले, (देवाः) देवगण, (दिवे दिवे) प्रतिदिन, (सदम् इत्) सदैव, (नः) हमारी, (वृधे) वृद्धि के लिए, (असन्) होवें ।

हिन्दी अर्थ : कल्याणकारी, विघ्नरहित, अप्रतिहत, शुभफलप्रद विचार हमें सभी ओर से प्राप्त हों । जिससे आलस्य-रहित और रक्षा करने वाले देवता प्रतिदिन सदा ही हमारी समृद्धि के लिए होवें, (हमारी समृद्धि करें) ।

Eng. Tr. : Let noble, harmless and auspicious thoughts come to us from all directions. So that the ever-wakeful and benedictory Gods may be beneficial to our progress.

अनुशीलन : इस मंत्र में चेतना के कुछ तत्त्वों का उल्लेख है । मानव विचारों का पुंज है, विचारों का मूर्तरूप है और विचारों की समष्टि है । जैसे विचार होते हैं, वैसी ही आकृति भी होती है । मनुष्य के विचारों की छाया उसके मुख पर देखी जा सकती है । सज्जन-दुर्जन, शिष्ट-अशिष्ट, साधु-असाधु, संयमी-असंयमी,

स्वस्थ-अस्वस्थ आकृति से पहचान लिए जाते हैं, अतएव मंत्र में विचार-शुद्धि पर बल दिया गया है। सद्विचार चारों ओर से हमारे अन्दर आवें। 'बालादपि सुभाषितम्' बालक से भी अच्छी बात ग्रहण करनी चाहिए। बालक भी यदि हितकारी बात कहता है तो उसे अपनाना चाहिए। विचारों का इतना महत्त्व है कि वे वस्तुतः मनुष्य का काया-कल्प कर देते हैं। जैसे विचार मनुष्य में होंगे, वैसा ही वह बन जाता है। अतः कहा गया है कि—

यन्मनसा ध्यायति तद् वाचा वदति, यद् वाचा वदति तत् कर्मणा करोति, यत् कर्मणा करोति तदभिसंपद्यते।

मनुष्य जो कुछ मन में सोचता है, वही वाणी से कहता है। जो वाणी से कहता है, वैसा ही कर्म करता है और जैसे कर्म करता है, उसी प्रकार बन जाता है।

इसलिए विचारों की शुद्धि पर बल दिया गया है। सद्विचार सभी ओर से आवें, यही देवों की कृपा है, यही परमात्मा की कृपा है और यही कल्याण का मार्ग है। महाभारत का सुभाषित है कि--

न देवा यष्टिमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्धया संयोजयन्ति तम्॥ विदुर० ३.४०

देवता ग्वाले की तरह डंडा लेकर मनुष्य की रक्षा नहीं करते हैं, अपितु जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसे सद्बुद्धि दे देते हैं, उसे उत्तम विचार दे देते हैं।

टिप्पणी : [१] **अदब्धासः**—दब्ध—क्षत, अदब्ध—अक्षत। नञ् [अ] + दभ् + क्त [त] + प्रथ० ३। [२] **आ यन्तु**—आवें। यन्तु—इ [जाना अदादि] + लोट् प्र० ३। [३] **अपरीतासः**—परीत—घिरे हुए, प्रतिहत, अपरीत--न घिरे हुए, अबाध, बेरोक-टोक। नञ् [अ] + परि + इ [जाना] + क्त [त] + प्रथ० ३। [४] **उद्भिदः**—उन्नतिकारी, फल को प्रकट करने वाले। उद् + भिद् + क्विप् [०] + प्रथ० ३। [५] **सदम्**—

सदा, इत्—ही, सदैव। [६] असन्—होवें। अस् [होना, अदादि]। लेट् + प्र० ३। [७] अप्रायुवः—आलस्यरहित, कर्मठ। नञ् + प्र + आ + यु [अदादि] + क्विप् [०] + प्रथमा ३। [८] रक्षितारः—रक्षक। रक्ष् + तृच् + प्रथमा ३। [९] दिवे दिवे—प्रतिदिन।

६८. शुभ विचार से पाप-नाशन

भद्रा उत प्रशस्तयो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये।
येना समत्सु सासहः॥

यजु० १५.३९

अन्वय : (हे अग्ने) उत प्रशस्तयः भद्राः, वृत्रतूर्ये मनः भद्रं कृणुष्व, येन समत्सु सासहः।

शब्दार्थ : हे अग्नि, (उत) और, (प्रशस्तयः) प्रशस्तियाँ, (भद्राः) कल्याणकारी हों। (वृत्रतूर्ये) वृत्र अर्थात् पाप के नाश के लिए, (मनः) मन को, (भद्रम्) शुभ, कल्याणकारी, (कृणुष्व) कीजिए। (येन) जिससे, तुम, (समत्सु) युद्धों में, (सासहः) विजय प्राप्त करते हो।

हिन्दी अर्थ : हे अग्निरूप परमात्मन्! हमारी प्रशस्तियाँ कल्याणकारी हों। पापों के नाश के लिए मन को शुभ कीजिए, जिस (शुभ मन) से तुम युद्धों में विजय प्राप्त करते हो।

Eng. Tr. : O Gods! May our prayers be auspicious. Make our mind courageous and energetic to confront the evils. By which you won the field.

अनुशीलन : इस मन्त्र में विचारों की शुद्धता के लाभ बताये गये हैं। शुभ विचार, शिव संकल्प और मनःशुद्धि जीवन को सुखमय बनाते हैं। पाप का ही नाम वृत्र है। 'पाप्मा वै वृत्रः'। ब्राह्मण ग्रन्थों में पाप को वृत्र,

वृत्रासुर आदि कहा गया है। वेदों में सर्वत्र वर्णन है कि इन्द्र ने वज्र से वृत्रासुर को मारा। इन्द्र जीवात्मा को कहते हैं। जीवात्मा अपने इच्छा-शक्तिरूपी वज्र से पाप-भावनारूपी वृत्रासुर को मारता है। यही वृत्र-वध का वास्तविक अर्थ है। इन्द्र और वृत्र किसी व्यक्ति-विशेष के नाम नहीं हैं, अपितु जीवात्मा और पाप-भावना के विचारों के युद्ध का आलंकारिक वर्णन है। शुभ-विचारों और शुभ भावों को प्रबल कर देने से जीवात्मा विजयी हो जाता है। यही इन्द्र की विजय का रहस्य है। इसलिए मंत्र में निर्देश किया गया है कि वृत्र को मारना हो तो मन को पवित्र करो। इसी पवित्रता से सभी युद्धों में विजय-श्री प्राप्त होती है।

टिप्पणी : [१] **प्रशस्तयः**—प्रशस्तियाँ, स्तुतियाँ, यश। [२] **कृणुष्व**—कीजिए। कृ + लोट् म० १। [३] **वृत्रतूर्ये**—वृत्र के नाश में। 'पाप्मा वै वृत्रः'। पाप को वृत्र कहते हैं, उसके नाश के लिए। तूर्य—तूर् [हिंसा करना, दिवादि] धातु से। तूर्य—तृ + य। तृ धातु से तूर्य मानने पर अर्थ होगा—वृत्र पर विजय प्राप्त करने के लिए। पापों पर विजय के लिए। [४] **येना**—येन को छान्दस दीर्घ है। [५] **समत्सु**—युद्धों में। समद् [युद्ध] + सप्तमी ३। [६] **सासहः**—जीतते हो। सह् [जीतना] + लेट् म० १। धातु को द्वित्व, अभ्यास के अ को दीर्घ। [७] शुभ मन या शुभ विचारों से ही पापों का नाश होता है। शुभ विचारों से ही युद्धों में विजय प्राप्त होती है।

६९. विचारशक्ति का संप्रेषण

अनुमतेऽन्विदं मन्यस्व-आकूते समिदं नमः।
देवाः प्र हिणुत स्मरम्-असौ मामनु शोचतु ॥

अथर्व० ६. १३१.२

अन्वय : हे अनुमते! इदम् अनु मन्यस्व। हे आकूते! इदं नमः सम् (मन्यस्व)। हे देवाः! स्मरं प्र हिणुत। असौ माम् अनु शोचतु।

शब्दार्थ : (हे अनुमते !) हे अनुमति देवी ! (इदम्) इसको, इस इच्छा को, (अनुमन्यस्व) अनुमति या स्वीकृति दो । (हे आकूते !) हे विचारशक्ति ! (इदम्) यह, (नमः) नमस्कार, प्रणाम, (सम् मन्यस्व) स्वीकार करो, संमान करो । (हे देवाः) हे देवो !, (स्मरम्) कामभाव को, (प्र हिणुत) (असौ) यह स्त्री, (माम्) मुझको, मेरे लिए, (अनु शोचतु) शोक भेजो । करे, दुःखित हो ।

हिन्दी अर्थ : हे अनुमति देवी ! तुम मेरी इस कामना के लिए स्वीकृति दो । हे संकल्प शक्ति ! तुम मेरे इस प्रणाम को स्वीकार करो । हे देवो ! तुम कामदेव को (प्रेमिका के पास) भेजो । वह (प्रेमिका) मेरे लिए चिन्तित हो (दुःखित हो) ।

Eng. Tr. : O Goddess of permission ! May you approve my desire. O Goddess Thought-power ! May you accept my obeisance. O Gods ! May you send forth cupid (to my beloved). May she be aggrieved for me.

अनुशीलन : इस मंत्र में विचारशक्ति (Thought-power) के संप्रेषण (Transmission) का उल्लेख है । जिस प्रकार विद्युत् तरंगों का संप्रेषण और ग्रहण होता है, उसी प्रकार विचारशक्ति का भी आदान-प्रदान होता है । विद्युत् तरंगें Radio-waves, Micro-waves आदि के रूप में प्रेषित की जाती हैं और उनका तदनुरूप यंत्र से आदान होता है । उसी प्रकार विचारशक्ति की तरंगों का भी संप्रेषण और ग्रहण के रूप में आदान-प्रदान होता है ।

प्रेमी और प्रेमिका अपनी विचारशक्ति से अपने विचारों को दूसरे तक पहुँचाते हैं और वह उन विचारों को ग्रहण करके प्रसन्न या खिन्न होता है । विचारों की सूक्ष्मगति विद्युत् तरंगों की गति से किसी भी प्रकार हीन नहीं है । इसका प्रेमी या प्रेमिका पर तुरन्त प्रभाव पड़ता है ।

विचारों के संप्रेषण के लिए अनुमति और आकूति देवियों को स्मरण किया

गया है। यहाँ पर अनुमति का अभिप्राय है—आत्मा के द्वारा विचारों के संप्रेषण की स्वीकृति। आत्मा की अनुमति के बिना विचारों का संप्रेषण या संक्रमण नहीं होता है। अनुमति के पश्चात् आकूति देवी विचारों को उद्बुद्ध करती है और प्रेषित करती है। अनुमति कारण है और आकूति कार्य है। दोनों में कारण-कार्य संबन्ध है। इन दोनों के द्वारा ही ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ काम करती हैं। इनके कार्यों को यजुर्वेद में क्रतु (ज्ञान) और दक्ष (क्रिया) शब्दों के द्वारा प्रकट किया गया है।

अन्विदनुमते त्वं मन्यासै, शं च नस्कृधि।
क्रत्वे दक्षाय नो हिनु, प्र ण आयूंषि तारिषः॥

यजु० ३४.८

टिप्पणी : [१] अनु मन्यस्व–अनुमति दो। अनु + मन् [अनुमति देना, दिवादि] + लोट् म० १। [२] प्र हिणुत–भेजो। प्र + हि [भेजना, स्वादि] + लोट् म० ३। [३] अनुशोचतु–शोक करें, दुःख करे। अनु + शुच् [शोक करना, भ्वादि] + लोट् प्र० १।

७०. विचारों में संप्रेषण-शक्ति

दूराच्चकमानाय, प्रतिपाणायाक्षये।
आस्मा अशृण्वन्नाशाः, कामेनाजनयन् स्वः॥

अथर्व० १९.५२.३

अन्वय : दूरात् चकमानाय प्रतिपाणाय अक्षये अस्मै आशाः आ अशृण्वन्, कामेन स्वः अजनयन्।

शब्दार्थ : (दूरात्) दूर से, (चकमानाय) कामना करने वाले के लिए, (प्रतिपाणाय) सुरक्षा के लिए, (अक्षये) अक्षय सुख के निमित्त, (अस्मै) इसके लिए, (आशाः) दिशाओं ने, (आ अशृण्वन्) अभीष्ट फल देने का

आश्वासन दिया। (कामेन) इच्छाशक्ति से, (स्वः) सुख, आनन्द, (अजनयन्) उत्पन्न किया।

हिन्दी अर्थ : दूर से कामना करने वाले के लिए, सुरक्षा और अक्षय फल के लिए, दिशाओं ने उसे अभीष्ट पूर्ति का आश्वासन दिया और विचारशक्ति से अभीष्ट सुख उत्पन्न किया।

Eng. Tr. : For one, who desires from a distant place, the directions promised to fulfil his desires, for protection and inexhaustible joy. By means of will-power they created happiness.

अनुशीलन : इस मंत्र में विचारों के संप्रेषण (Transmission) का वर्णन किया गया है। विचार सूक्ष्मतम तत्त्व हैं। ये आवश्यकतानुसार उद्बुद्ध होते हैं और गतिशील होते हैं। विचारों के प्रभाव से ही दुरानुभूति (Telepathy) होती है। इस दूरानुभूति के द्वारा ही सहस्रों मील दूर व्यक्ति के भावों को इष्ट व्यक्ति जान लेता है। यह दूरानुभूति जागृत और स्वप्न दोनों अवस्थाओं में होती है।

मंत्र में 'दूरात् चकमानाय' के द्वारा इसी दूरानुभूति का निर्देश है। विचारों में विद्युत् तरंगों के तुल्य संप्रेषणशक्ति है। यह संप्रेषण इष्ट व्यक्ति तक हार्दिक अनुभूति के रूप में पहुँचता है।

इस दुरानुभूति के दो उद्देश्य बताए गए हैं—सुरक्षा और सुख। जब कोई दूरस्थ इष्ट व्यक्ति घोर कष्ट या विशेष लाभ की स्थिति में होता है तो वह अपने विचारों को तुरन्त अपने संबन्धी तक पहुँचाना चाहता है। ऐसी अवस्था में ऐसे विचारों का संप्रेषण होता है।

मंत्र में यह भी संकेत है कि ऐसे विचारों के संप्रेषण को दिशाएँ जानती हैं। आकाशीय सूक्ष्म तत्त्वों के माध्यम से इन विचारों का आदान-प्रदान होता है,

संप्रेषण और संग्रहण होता है, अतः दिशाएँ इस तथ्य को जानती हैं। इस संप्रेषण का फल यह होता है कि दोनों पक्षों को हार्दिक शान्ति प्राप्त होती है। अभीष्ट व्यक्ति तक अपने सुख या दुःख की अनुभूति पहुँचाने से मन को सुख और शान्ति प्राप्त होती है।

टिप्पणी : [१] **चकमानाय**—चाहने वाले के लिए। कम् [चाहना, भ्वादि] + लिट् > कानच् [आन] = चकमान + च० १। [२] **प्रतिपाणाय**—सुरक्षा के लिए। प्रति + पा [रक्षा करना] + ल्युट् [अन] + च० १। [३] **अक्षये**—अक्षय सुख के निमित्त। चतुर्थी के अर्थ में सप्तमी। [४] **आ अश्रृण्वन्** सुना, प्रतिज्ञा की। आ + श्रु [प्रतिज्ञा करना, वचन देना] + लङ् प्र० ३। [५] **अजनयन्**—उत्पन्न किया। जन् [पैदा होना, दिवादि] + णिच् + लङ् प्र० ३।

७१. विचारों में संक्रमण-शक्ति

कामेन मा काम आगन्, हृदयाद् हृदयं परि।
यदमीषामदो मनस्-तदैतूप मामिह॥

अथर्व० १९.५२.४

अन्वय : कामेन कामः मा आ अगन्। हृदयात् हृदयं परि (आगन्)। अमीषां यत् अदः मनः, तत् इह माम् उप आ एतु।

शब्दार्थ : (कामेन) संकल्प से, विचार-शक्ति से, (कामः) विचार, (मा) मुझको, मुझ में, (आ अगन्) आया। (हृदयात्) एक हृदय से, (हृदयम्) दूसरे हृदय में, (परि आगन्) आ गया। (अमीषाम्) इन लोगों का, (यत्) जो, (अदः) यह, (मनः) मन है, (तत्) वह, (इह) यहाँ, (माम्) मेरे पास, (उप आ एतु) आ जावे।

हिन्दी अर्थ : दूसरे की विचार-शक्ति से मुझमें विचार आ गया। एक

हृदय का विचार दूसरे हृदय में आ गया। इनका जो यह मन है, वह यहां मेरे पास आवे।

Eng. Tr. : B, thought-force thought came to my mind. It was transfe.red from one heart to another. May their mental-power come to me.

अनुशीलन : इस मंत्र में विचारों के संक्रमण का उल्लेख है। विचारों का एक हृदय से दूसरे हृदय में संक्रमण (Transference) होता है। एक हृदय की भावना दूसरे के हृदय में प्रविष्ट होती है।

यह संक्रमण प्रायः तादात्म्यमूलक होता है। जब तादात्म्य या एकात्मता की अनुभूति होती है, तब प्रेम, सद्भावना, सान्त्वना, शुभकामना, सहानुभूति आदि के भाव एक हृदय से दूसरे हृदय में प्रतिफलित होते हैं। इस प्रकार के संक्रमण प्रायः गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका आदि में होते हैं। इस संक्रमण का मूल एकत्व की अनुभूति है।

इस भाव-संक्रमण के द्वारा दूसरे के हृदय को जीता जा सकता है। इस संक्रमण में आकर्षण-शक्ति भी है। यह आकर्षण-शक्ति दूसरे को अपनी ओर आकृष्ट करती है, जिससे वह वशीभूत हो जाता है और उसके अनुसार आचरण करता है। वक्ता और श्रोता, अभिनेता और दर्शक आदि में इसी प्रकार का आकर्षण काम करता है। विचार सूक्ष्म तन्तु के रूप में दोनों पक्षों को परस्पर सम्बद्ध कर देता है।

टिप्पणी : [१] आ अगन्—आया। आ + गम् [आना, भ्वादि] + लुङ् प्र० १। सिच् का लोप, Root-Aorist है। [२] आ एतु—आवे। आ + इ [आना, अदादि] + लोट् प्र० १।

७२. विचारों में आकर्षण-शक्ति

यद् वो मनः परागतं, यद् बद्धमिह वेह वा।
तद् व आ वर्तयामसि, मयि वो रमतां मनः॥

अथर्व० ७.१२.४

अन्वय : (हे सभासदः) वः यत् मनः परागतम्, यत् इह वा इह वा बद्धम्। वः तत् आ वर्तयामसि। वः मनः मयि रमताम्।

शब्दार्थ : (हे सभासदः !) हे सभासदो !, (वः) तुम्हारा, (यत्) जो, (मनः) मन, (परागतम्) दूर गया है, (यत्) जो, (इह वा) यहाँ, (इह वा) या वहाँ, (बद्धम्) बंधा हुआ है, लगा हुआ है। (वः) तुम्हारा (तत्) वह मन, (आ वर्तयामसि) हम लौटा लाते हैं। (वः) तुम्हारा, (मनः) मन, (मयि) मुझमें, (रमताम्) रमे, लगा रहे।

हिन्दी अर्थ : हे सभासदो ! तुम्हारा जो मन दूर चला गया है, जो इधर-उधर फंसा हुआ है, उसे हम लौटाकर लाते हैं। तुम्हारा मन मेरी ओर लगा रहे।

Eng. Tr. : O Members of the assembly ! That your mind, which had gone afar and was engaged in different things, we bring it back. Let your mind concentrate on me.

अनुशीलन : इस मंत्र में विचारों में आकर्षण-शक्ति का उल्लेख किया गया है। विचारों में आकर्षण या चुम्बकीय शक्ति (Magnetic power) है। जिस प्रकार चुम्बक लोहे को अपनी ओर खींच लेता है, उसी प्रकार उग्र विचार सामान्य विचारों को अपनी ओर खींच लेता है।

मन उन्मुक्त घोड़े की तरह है। वह क्षण भर में इधर-उधर घूमने लगता है। जिस प्रकार मधुर संगीत मृग आदि को अपनी ओर खींच लेता है, उसी प्रकार उग्र विचार दूसरे के मन को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। यह

आकर्षण सूक्ष्मता और श्रेष्ठता के आधार पर होता है। जहाँ घनत्व और तीव्रता होती है, वहाँ आकर्षण शक्ति की अधिकता होती है। इस आकर्षण शक्ति के द्वारा ही Mesmerism और Hypnotism के सफल प्रयोग होते हैं।

टिप्पणी : [१] **परागतम्**—दूर गया। परा + गम् [जाना] + क्त [त]। [२] **बद्धम्**—बँधा है या लगा है। बन्ध् [बाँधना] + क्त [त]। [३] **आ वर्तयामसि**—लौटाते हैं। आ वृत् [लौटना, भ्वादि] + णिच् + लट् उ० ३। [४] **रमताम्**—रमे, लगे। रम् [लगना, भ्वादि] + लोट् प्र० १।

७३. विचार-शुद्धि से अजेयता

यो मा पाकेन मनसा चरन्तम्,
अभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः।
आप इव काशिना संगृभीता
असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता॥

ऋग्० ७.१०४.८; अथर्व० ८.४.८

अन्वय : हे इन्द्र ! पाकेन मनसा चरन्तं मा यः अनृतेभिः वचोभिः अभिचष्टे। काशिना संगृभीताः आपः इव असतः वक्ता असन् अस्तु।

शब्दार्थ : (हे इन्द्र !) हे ऐश्वर्ययुक्त परमात्मन् !, (पाकेन) पवित्र, (मनसा) मन से, (चरन्तम्) आचरण करने वाले, (मा) मुझको, (यः) जो व्यक्ति, (अनृतेभिः) असत्य, (वचोभिः) वचनों से, (अभिचष्टे) प्रत्याख्यान करता है, दोषारोपण करता है। (काशिना) मुट्ठी में, (संगृभीताः) लिए हुए, (आपः इव) जल की तरह, (असतः) असत्य का, (वक्ता) बोलने वाला, (असन्) अविद्यमान, अस्तित्वहीन, (अस्तु) होवे।

हिन्दी अर्थ : हे ऐश्वर्ययुक्त परमात्मन् ! पवित्र मन से आचरण करने वाले

मुझ पर जो असत्य वचनों से दोषारोप करता है, मुट्ठी में लिए हुए जल की तरह वह असत्य-भाषण करने वाला अस्तित्वहीन हो जावे।

Eng. Tr. : O Affluent God ! May the liar, who accuses me, the righteous one, with false allegations, come to an end, like the water kept in the fist.

अनुशीलन : इस मंत्र में विचारशुद्धि से अजेयता और असत्यभाषण से पतन का उल्लेख किया गया है। असत्यभाषण कभी स्वार्थ-सिद्धि के लिए किया जाता है और कभी परदोष-दर्शन की दृष्टि से। इस मन्त्र में सत्यवादी पर झूठे दोष लगाने और उसे नीचा दिखाने के प्रयत्न की निन्दा की गई है।

सत्य स्वयं अग्नि है। यह पवित्र करने के कारण पावक है। यह अग्नि दोषी को जलाती है। असत्यभाषी का आक्षेप सत्यवादी पर प्रभावी नहीं होता है। इसके विपरीत वह मिथ्याभाषण असत्यवादी के नाश का कारण बन जाता है। इस मंत्र में उदाहरण देकर विषय को स्पष्ट किया है कि मुट्ठी में लिया हुआ जल शीघ्र ही टपक जाता है, इसीप्रकार असत्यवादी की आत्मा शीघ्र ही क्षीण होकर नष्ट हो जाती है।

पर-दोष-दर्शन, पर-निन्दा और छिद्रान्वेषण ये अतिसुकर कर्म हैं, परन्तु इनका परिणाम अत्यन्त दुःखद है। ये मनुष्य को जड़ से ही भ्रष्ट और नष्ट कर डालते हैं। संस्कृत में दोष निकालने या छिद्रान्वेषण को असूया कहते हैं। असूया महान् दोष है। अतएव महाभारत में कहा गया है कि असूया साक्षात् मृत्यु है। इससे सदा बचना चाहिए।

असूयैकपदं मृत्युः। विदुरनीति ८-४

असत्यभाषण से बढ़कर कोई पाप नहीं है।

नानृतात् पातकं परम्। चा० नीति ४२१

टिप्पणी : [१] **चरन्तम्**—आचरण करने वाले को, रहने वाले को। चर् [जाना, भ्वादि] + शतृ द्वि० १। [२] **अभिचष्टे**—अभियोग लगाता है,

दोषारोपण करता है। अभि + चक्ष् [कहना, अदादि] + लट् प्र० १। [३] संगृभीताः—ली हुई। सम् + ग्रभ् [लेना, क्र्यादि] + क्त + प्र० ३। [४] असन् अस्तु—न रहे, नष्ट हो जाए। अ—नहीं, सन्—होना, अर्थात् लुप्त या नष्ट हो जाए।

७४. विचार-शुद्धि से काम-निरोध

यं देवाः स्मरमसिञ्चन्,
अप्स्वन्तः शोशुचानं सहाध्या।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा॥

अथर्व० ६. १३२. १

अन्वय : देवाः आध्या सह शोशुचानं यं स्मरम् अप्सु अन्तः असिञ्चन्, ते तं वरुणस्य धर्मणा तपामि।

शब्दार्थ : (देवाः) देवों ने, (आध्या सह) मानसिक व्यथा के साथ, (शोशुचानम्) शोकग्रस्त, पीडित, (यं स्मरम्) जिस कामदेव या कामभावना को, (अप्सु अन्तः) जल में, वीर्य में, (असिञ्चन्) सींचा, रखा। (ते) तेरे, (तम्) उस कामभाव को, (वरुणस्य) वरुण के, वरणीय परमात्मा के, (धर्मणा) नियमानुसार, धर्मानुसार, धार्मिक कृत्यों से, (तपामि) तपाता हूँ, शुद्ध करता हूँ।

हिन्दी अर्थ : देवों ने मानसिक व्यथा से संतप्त जिस कामभाव को जल (वीर्य) में रखा है, तुम्हारे उस कामभाव को वरुण (परमात्मा) के नियमानुसार (सात्त्विक विचारों से) शुद्ध करता हूँ।

Eng. Tr. : The Gods put the passion (Cupid), afflicted with the mental anguish, in the waters (i. e. in the semen). I purify that your passion by means of pure thoughts as advised by Varuna, the lord of waters.

अनुशीलन : इस मंत्र में स्मर शब्द के द्वारा काम (Passion) के गुण-दोषों का विवेचन किया गया है। काम शिव और अशिव दोनों रूप में है। सत्त्वमूलक काम सृष्टि का कर्ता और मानवीय कामनाओं का पूरक है। तमः-प्रधान काम विषय-भोग और सांसारिक वासनाओं का साधन है।

मंत्र में तमोगुण-प्रधान काम का विवेचन करते हुए बताया गया है कि यह मानसिक व्यथा और शोक का कारण है। अधिक विषय-वासना मानव के सत्त्व को नष्ट करके उसे निःसार बना देती है। व्यक्ति शारीरिक कष्ट और मानसिक चिन्ताओं से युक्त हो जाता है। यह दुर्गुण उसे सदा शोकाकुल बनाता है।

काम क्या है? अतृप्त वासनाओं की अभिव्यक्ति काम है। इसके तीन रूप हैं—सात्त्विक, राजस और तामस। तामस काम भोग-प्रधान है। इसमें भौतिक वासना-तृप्ति और शिश्न-सुख है। यह आधि और व्याधि का कारण है। राजस काम दाम्पत्य सुख, सन्तानोत्पत्ति और वंश-परंपरा को अविच्छिन्न रखने का साधन है। सात्त्विक काम मानव को ऊर्ध्वरेता, ज्ञानी और चिन्तक बनाता है। विचार-शुद्धि के कारण सात्त्विक काम लोकमंगल, विश्वहित और विश्वप्रेम में परिवर्तित होता है।

मंत्र में वर्णन किया गया है कि वरुण या परमात्मा के नियमानुसार काम को तपा कर शुद्ध किया जाता है। जिस प्रकार लोहे को तपाकर शुद्ध किया जाता है, उसी प्रकार काम को तपाने पर वह निर्दोष हो जाता है। उसमें सात्त्विकता, प्रेरकता और तीक्ष्णता आ जाती है। इससे वह वैयक्तिक वासना की तृप्ति न करके विश्वहित और विश्वप्रेम की भावना को संपुष्ट करता है।

टिप्पणी : [१] असिञ्चन्—सींचा, रखा। सिच् [सींचना, तुदादि] + लङ् प्र० ३। [२] शोशुचानम्—शोकग्रस्त, पीडित। शुच् [शोक करना, भ्वादि] + लिट् > कानच् [आन] + द्वि० १। [३] आध्या-मनोव्यथा से। मानसिक दुःख को आधि कहते हैं, शारीरिक दुःख को व्याधि। [४] तपामि-तपाता हूँ। तप् [तपाना, भ्वादि] + लट् उ० १।

७५. विचार-शुद्धि से समरसता

शिवास्त एका अशिवास्त एकाः
सर्वा बिभर्षि सुमनस्यमानः ।
तिस्रो वाचो निहिता अन्तरस्मिन्
तासामेका वि पपातानु घोषम् ॥

अथर्व० ७.४३.१

अन्वय : ते एकाः शिवाः, ते एकाः अशिवाः, सर्वाः सुमनस्यमानः बिभर्षि । तिस्रः वाचः अस्मिन् अन्तः निहिताः, तासाम् एका घोषम् अनु वि पपात ।

शब्दार्थ : (ते) तेरी, (एकाः) एक प्रकार की वाणियाँ, (शिवाः) शुभ या कल्याणकारी हैं । (ते) तेरी, (एकाः) दूसरी वाणियाँ, (अशिवाः) अशुभ हैं । (सर्वाः) सबको, शुभ-अशुभ वाणियों को, (सुमनस्यमानः) सद्-भावना या समरसता के कारण, (बिभर्षि) धारण करते हो, समान रूप से ग्रहण करते हो । (तिस्रः वाचः) तीन प्रकार की वाणियाँ, परा पश्यन्ती और मध्यमा वाणियाँ, (अस्मिन् अन्तः) इस शरीर के अन्दर, (निहिताः) रखी हैं । (तासाम् एका) उनमें से एक, वैखरी वाणी, (घोषम् अनु) तालु आदि से उत्पन्न शब्द के साथ, (वि पपात) निकलती है ।

हिन्दी अर्थ : तेरे पास दो प्रकार की वाणियां हैं—एक शुभ और दूसरी अशुभ । तुम दोनों प्रकार की वाणियों के समरसता के द्वारा साथ ही धारण करते हो । मनुष्य के शरीर के अन्दर अव्यक्तरूप से तीन वाणियां (परा, पश्यन्ती और मध्यमा) रहती हैं । उनमें से एक (वैखरी वाणी) शब्द के साथ बाहर आती है ।

Eng. Tr. : There are two kinds of speeches with you :— One auspicious and the other inauspicious. You possess both of them by your well-disposed mind. A man possesses in his

body three kinds of un-manifested speeches (Viz. परा, पश्यन्ती and मध्यमा). One of them (i. e. वैखरी) comes out with the articulated sounds.

अनुशीलन : इस मंत्र में वर्णन किया गया है कि मनस्तत्त्व और वाक्तत्त्व परस्पर संबद्ध हैं। मनस्तत्त्व के मूल में वाक्तत्त्व है। वाक्तत्त्व ही विचार-तत्त्व है। मन का कार्य है—संकल्प और विकल्प। इन दोनों का आधार है विचार। विचार के दो रूप हैं—शुभ और अशुभ, शिव और अशिव, निर्दोष और सदोष। मानव में विचार के ये दोनों पक्ष सदा विद्यमान रहते हैं। केवल इनके प्रयोग और उपयोग का अन्तर है।

मंत्र में 'सुमनस्यमानः' के द्वारा निर्देश दिया गया है कि मन को शुद्ध रख कर शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के विचारों को समभाव से रखना चाहिए। दोनों प्रकार के विचारों में सामंजस्य बनाए रखना ही विद्वत्ता और दक्षता है। विचारों में सात्त्विकता की वृद्धि होने से शुभ विचार विकसित होंगे और अशुभ विचार क्षीण होते जाएंगे। शुभ विचार उन्नति के साधक हैं और अशुभ विचार अवनति के।

इसी विषय को आगे स्पष्ट किया गया है कि वाक्तत्त्व या विचारतत्त्व की ४ कोटियां हैं—परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। परा अनादि अनन्त और विश्वव्यापी है। यह ज्ञान या विचार का शुद्ध विश्वव्यापी रूप है। जब ज्ञान में चिन्तन की भावना जागृत होती है तो उसे पश्यन्ती कहते हैं। इस अवस्था में ज्ञान उद्बुद्ध होता है। इसके पश्चात् उन विचारों को प्रकट करने लिए शरीर-यंत्र में गति होती है। प्राणवायु ऊपर उठती है और गले तक पहुँचती है। इसे मध्यमा अवस्था कहते हैं। इस स्थिति तक वाणी या विचार अव्यक्त रहते हैं। इसके पश्चात् मुंह से शब्द निकलते हैं। यह वैखरी अवस्था है।

मंत्र का अभिप्राय है कि मध्यमा तक वाणी अप्रकट है, अतः नियन्त्रित है।

व्यक्त एवं उच्चरित वाणी पर पूर्ण नियन्त्रण आवश्यक है। व्यक्त वाणी के द्वारा शुभ विचार ही बाहर आने चाहिए, अशुभ नहीं।

टिप्पणी : [१] बिभर्षि—धारण करते हो। भृ [रखना, जुहोत्यादि] + लट् म० १। [२] सुमनस्यमानः—सौमनस्य से, सद्भाव से। सु + मनस् + क्यङ् [य] > सुमनस्य + शानच् [आन]। [३] निहिताः—रखी हैं। नि + धा [रखना] + क्त [त]। धा को हि। [४] वि पपात—गिरी, निकली, निकलती है। पत् [गिरना, भ्वादि] + लिट् प्र० १।

७६. सद्विचार से पापनाश

सं जानामहै मनसा सं चिकित्वा,
मा युष्महि मनसा दैव्येन।
मा घोषा उत् स्थुर्बहुले विनिर्हते,
मेषुः पप्तदिन्द्रस्याहन्यागते॥

अथर्व० ७.५२.२

अन्वय : मनसा सं जानामहै। चिकित्वा सं (जानामहै)। दैव्येन मनसा मा युष्महि। बहुले विनिर्हते घोषाः मा उत् स्थुः। अहनि आगते इन्द्रस्य इषुः मा पप्तत्।

शब्दार्थ : (मनसा) मन से, (सं जानामहै) हम ऐकमत्य स्थापित करें। (चिकित्वा) विद्वानों से, (सं जानामहै) ऐकमत्य स्थापित करें। (दैव्येन मनसा) दिव्य मन से, (मा) मत, (युष्महि) वियुक्त हों। (बहुले) बहुतों के, (विनिर्हते) मरने पर भी, (घोषाः) शोक की ध्वनि, (मा) मत, (उत् स्थुः) उठे, निकले। (अहनि आगते) समय आनेपर, (इन्द्रस्य) इन्द्र या परमात्मा का, (इषुः) बाण, घातक अस्त्र या क्रोधरूपी अस्त्र, (मा) मत, (पप्तत्) गिरे।

हिन्दी अर्थ : हम सबसे मन से ऐकमत्य स्थापित करें। विद्वानों से ऐकमत्य रखें। हम दिव्य मन से वियुक्त न हों। बहुतों के मरने पर भी शोक की ध्वनि न निकले। समय आने पर परमात्मा का क्रोधरूपी बाण हमारे ऊपर न गिरे।

Eng. Tr. : May we have cordial relations with all. May we have concord with the wise persons. May we not be separated from the divine mind. May we not lament even at the death of many persons. Let not the fatal anger of God fall on us on the decisive day.

अनुशीलन : इस मंत्र में संज्ञान का वर्णन करते हुए तीन बातों पर ध्यान आकृष्ट किया गया है। ये हैं—१. सबसे ऐकमत्य स्थापित करें। २. दिव्य मन से युक्त हों। ३. राष्ट्रहित के लिए बलिदान हों।

इस मन्त्र में संज्ञान का उपदेश दिया गया है। सभी से संज्ञान या एकात्मता स्थापित हो। विद्वानों से विशेष रूप से संज्ञान की स्थापना करें। संज्ञान पारस्परिक सद्भावना, स्नेह, एकता और सांमनस्य की सृष्टि करता है। संज्ञान से व्यक्तित्व का विकास होता है। इससे अगणित व्यक्तियों से आत्मीयता स्थापित की जा सकती है। विद्वानों से आत्मीयता विशेष रूप से उन्नति का साधन है।

दिव्य मन या सुसंस्कृत बुद्धि संज्ञान का साधन है। जब सद्विचार उद्बुद्ध होंगे, तभी संज्ञान की भावना प्रकट होगी। सद्विचारों से सांमनस्य उत्पन्न होगा और उससे दूसरों से आत्मीयता की अनुभूति होगी। इसलिए मंत्र में कहा गया है कि दिव्य मन से वियुक्त न हों।

संज्ञान से विश्व और राष्ट्र के अभ्युदय की भावना भी जागृत होती है। इसके लिए कभी-कभी बहुत से लोगों के बलिदान की भी आवश्यकता होती है। मंत्र का संकेत है कि राष्ट्रहित और विश्वहित के लिए यदि बलिदान भी होता है तो उसमें प्रसन्नता अनुभव करें, न कि शोक।

टिप्पणी : (१) **सं जानामहै**—ऐकमत्य या सद्भाव रखें। सम् + ज्ञा (संज्ञान रखना, क्र्यादि) + लोट् उ० ३। (२) **चिकित्वा**—विद्वानों से। चित् > चिकित्वन् (विद्वान्) + तृ० १। (३) **मा युष्महि**—वियुक्त न हों। यु (अलग होना, अदादि) + लुङ् उ० ३। Inj. है। (४) **मा उत् स्थुः**—न उठें। उत् + स्था (उठना, भ्वादि) + लुङ् प्र० ३। अडागम नहीं Inj. है। (५) **मा पप्तत्**—न गिरे। पत् (गिरना, भ्वादि) + लुङ् प्र० १। पत् को द्वित्व, अडागम नहीं, Inj. है।

७७. सद्विचार से देवकृपा

पाकत्रा स्थन देवा, हृत्सु जानीथ मर्त्यम्।
उप द्वयुं चाद्वयुं च वसवः॥

ऋग्० ८.१८.१५

अन्वय : हे देवाः ! पाकत्रा स्थन। हे वसवः। द्वयुं च अद्वयुं च मर्त्यं हृत्सु उप जानीथ।

शब्दार्थ : (हे देवाः) हे देवो !, (पाकत्रा) पवित्र व्यक्तियों में, (स्थन) रहते हो। (हे वसवः) हे वसुओ ! हे विश्व के आश्रयदाता देवो ! (द्वयुं च) कपटी, (अद्वयुं च) और निष्कपट, (मर्त्यम्) मनुष्य को, (हृत्सु उप) हृदय में पहुँच कर, (जानीथ) जानते हो।

हिन्दी अर्थ : हे देवो ! तुम पवित्र व्यक्तियों में रहते हो। हे वसु-देवो ! तुम कपटी और निष्कपट व्यक्तियों को हृदय में पहुँच कर जानते हो।

Eng. Tr. : O Gods ! You reside in the hearts of virtuous persons. O Vasu-Gods ! You know the honest and dishonest persons approaching to their hearts.

अनुशीलन : इस मंत्र में वर्णन किया गया है कि जहाँ शुभ विचार हैं, वहाँ देवों का निवास है। जहाँ अशुभ विचार हैं, वहाँ देवों का अभाव है।

देव क्या हैं? मानव-शरीर में विद्यमान दिव्य शक्तियों को देव कहते हैं। मनुष्य के मन में देव और राक्षस दोनों विद्यमान हैं। शुभ विचार, शिव संकल्प और सात्त्विक प्रेरणाएँ दैवी गुण हैं। इसके विपरीत काम क्रोध मद लोभ ईर्ष्या द्वेष आदि राक्षसी तत्त्व हैं। आत्मा इन दोनों तत्त्वों को देखता और जानता है। दैवी गुण मनुष्य को उन्नति की ओर ले जाते हैं और आसुरी या राक्षसी तत्त्व अवनति को।

मंत्र का अभिप्राय है कि यदि मनुष्य आत्मोन्नति और व्यक्तित्व (Personality) को विकसित करना चाहता है तो शुभ विचारों को अपनावे, सात्त्विक भावों को आश्रय दे और जीवन में पवित्रता लावे। जहाँ पवित्रता है, वहाँ देवों का निवास है। जहाँ देवों का निवास है, वहाँ उन्नति, विकास और अभ्युदय है।

टिप्पणी : [१] **पाकत्रा**—पवित्रों में। पाक + त्र। सप्तमी अर्थ मे त्र। [२] **स्थन**—हो। अस् [होना, अदादि] + लट् म० ३। थ को थन। [३] **जानीथ**—जानते हो। ज्ञा [जानना, क्र्यादि] + लट् म० ३। ज्ञा जो जा आदेश। [४] **द्वयुम्**—कपटी, दोगला, दुहरा वोलने वाला। [५] **अद्वयुम्**—सच्चा, निष्कपट। [६] **वसवः**—आश्रय या निवास देने वाले को वसु कहते हैं। ये ८ हैं—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र।

७८. सद्विचार से आत्मसाक्षात्कार

पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया
हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चितः।
समुद्रे अन्तः कवयो वि चक्षते
मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः॥

ऋग्० १०.१७७.१

अन्वय : असुरस्य मायया अक्तं पतङ्गं विपश्चितः हृदा मनसा पश्यन्ति। कवयः समुद्रे अन्तः वि चक्षते। वेधसः मरीचीनां पदम् इच्छन्ति।

शब्दार्थ : (असुरस्य) प्राणशक्तिसंपन्न परमात्मा की, (मायया) शक्ति से, (अक्तम्) युक्त, अभिव्यक्त, (पतङ्गम्) आत्मा को, जीवात्मा को, (विपश्चितः) विद्वान् लोग, (हृदा मनसा) हृदय और मन को मिलाकर, (पश्यन्ति) देखते हैं। (कवयः) क्रान्तदर्शी विद्वान्, (समुद्रे अन्तः) समुद्र में, हृदयरूपी समुद्र में, (वि चक्षते) देखते हैं। (वेधसः) ऋततत्त्व के ज्ञाता विद्वान्, (मरीचीनाम्) किरणों या प्रकाश के, (पदम्) स्थान या आधार परमात्मा को, (इच्छन्ति) चाहते हैं।

हिन्दी अर्थ : परमात्मा की शक्ति से समन्वित जीवात्मा को विद्वान् लोग हृदय और मन को संबद्ध करके देखते हैं। कवि लोग हृदयरूपी समुद्र में उसे (रसरूप में) देखते हैं। ऋततत्त्व के ज्ञाता विद्वान् लोग प्रकाश के आधार-रूप (सच्चिदानन्दरूप) परमात्मा को प्राप्त करना चाहते हैं।

Eng. Tr. : The wise persons visualize the individual soul, having the power of Supreme Being, by the mental force associated with the heart. The poets perceive him in the ocean-like hearts (in the form of sentiments). The sagacious seers desire to see the Supreme Being, the obode of lustre.

अनुशीलन : इस मंत्र में जीवात्मा या चेतना (Consciousness) के गुणों का वर्णन किया गया है। जीवात्मा को पतंग कहा गया है। यह उड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता है, एक शरीर से दूसरे शरीर में जाता है, यह पक्षी के तुल्य अस्थिरवृत्ति है, अतः इसे पतंग कहा है।

इस चेतना में अनेक दिव्य शक्तियाँ हैं, अतः इसे दैवी माया या शक्तियों से युक्त कहा गया है। मन की अनन्त शक्तियाँ हैं। इन शक्तियों के साक्षात्कार का उपाय बताया गया है—मन और हृदय का समन्वय। मन विचारों का केन्द्र है और हृदय अनुभूतियों का। दोनों के समन्वय से चेतना का शुद्ध रूप प्रस्फुरित होता है।

जीवात्मा या चेतना ज्योतिरूप है, प्रकाश का पुंज है। विद्वान् या मनीषी व्यक्ति इस चेतना के वास्तविक स्वरूप को जानना चाहते हैं। इसके जानने का प्रकार बताया गया है कि यह आत्मतत्त्व मानव के हृदयरूपी समुद्र में देखा जा सकता है। मन और हृदय की सूक्ष्म गतिविधि को देखकर आत्म-तत्त्व का वास्तविक रूप जाना जा सकता है। इस आत्मतत्त्व को 'रसो वै सः' रसरूप कहा गया है। यह आनन्दरूप है, रसमय है। विचारों की शुद्धि, हृदय की पवित्रता और मानसिक परिष्कार से इस रसस्वरूप आत्मतत्त्व का साक्षात्कार होता है।

टिप्पणी : [१] अक्तम्—युक्त। अञ्ज् [मिलाना, स्वादि] + क्त [त]। [२] विचक्षते—देखते हैं। वि + चक्ष् [देखना, अदादि] + लट् प्र० ३।

७९. कुविचारों के नाश से सुख

अभि प्र भर धृषता धृषन्मनः
श्रवश्चित् ते असद् बृहत्।
अर्षन्त्वापो जवसा वि मातरो
हनो वृत्रं जया स्वः॥ ऋग्० ८.८९.४

अन्वय : हे धृषन्मनः ! ते श्रवः चित् बृहत् असत्। धृषता अभि प्र भर। मातरः आपः जवसा वि अर्षन्तु। वृत्रं हनः, स्वः जय।

शब्दार्थ : (हे धृषन्मनः) हे धर्षक मन वाले परमात्मन्! (ते) तेरा, (श्रवः चित्) यश, कीर्ति, (बृहत्) बड़ा, महान्, (असत्) है। (धृषता) धर्षक या साहसी मन से, (अभि प्र भर) वह यश हमें दो। (मातरः आपः) मातृतुल्य जल या मातृतुल्य व्यापक शक्तियाँ, (जवसा) वेग से, (वि अर्षन्तु) बहें, प्राप्त हों। (वृत्रम्) पाप को, कुविचारों को, (हनः) मारो, (स्वः) सुख, कल्याण को, (जय) जीतो।

हिन्दी अर्थ : हे महामनस्वी परमात्मन् ! तेरा यश महान् है। तुम अपने साहसी मन से (वह यश) हमें दो। मातृतुल्य तुम्हारी व्यापक शक्तियाँ वेग से बहें (हमें प्राप्त हों)। पापों को नष्ट करो और आनन्द को जीतो (प्राप्त करो)।

Eng. Tr. : O Bold-minded Supreme Being ! You possess excellent glory. With your bold mind bless us with that glory. Let your mother-like powers come to us. Destroy evil thoughts and enjoy happiness.

अनुशीलन : इस मंत्र में दो बातों पर ध्यान आकृष्ट किया गया है। ये हैं—
१. यश की प्राप्ति के लिए तीव्र संवेग, २. पापों के नाश से सुख की प्राप्ति।

इस मंत्र में परमात्मा को 'धृषन्मनः' अर्थात् धर्षक मन वाला कहा गया है। धर्षक मन का अभिप्राय है—किसी भी स्थिति में अपने लक्ष्य से विचलित न होना, विपत्तियों या विघ्नों पर विजय प्राप्त करना। जिस प्रकार परमात्मा अधृष्य मन वाला है, उसी प्रकार यश के लिए अधृष्य मन वाला होना आवश्यक है। तीव्र संवेग (Emotions) ही मनुष्य को यशस्वी बनाते हैं। तीव्र संवेग से ही मानव की महत्त्वाकांक्षा पूर्ण होती है।

मंत्र में दूसरी बात व्यक्तित्व (Personality) के विकास की कही गई है। पापों को नष्ट करो और स्वर्ग या सुख को जीतो। मानव की उन्नति में बाधक कौन हैं ? पाप, अशुभ विचार और हीन भावनाएँ। इनको जीतने का उपाय है—आन्तरिक शक्तियों को विकसित करना। इन शक्तियों को ही मंत्र में माता कहा गया है। ये आन्तरिक शक्तियाँ प्रबुद्ध होकर पाप के विचारों को नष्ट करती हैं। पापों का नष्ट होना ही स्वर्ग का द्वार खुलना है, आनन्द और सुख की प्राप्ति है।

टिप्पणी : [१] अभि प्र भर—भरो, दो। अभि + प्र + हृ [लाना, भ्वादि] + लोट् म० १। हृ को भ्। [२] असत्—है। अस् [होना, अदादि] + लेट् प्र० १। Sub. है। [३] अर्षन्तु—बहें। ऋष् [बहना, भ्वादि] + लोट् प्र० ३। [४] जवसा—वेग से। जवस् [वेग] + तृ० १। [५] हनः—मारो, नष्ट करो। हन् [मारना, अदादि] + लेट् म० १। [६] वृत्रम्—वृत्र को, पाप को। "पाप्मा वै वृत्रः" शत० ब्रा० ११.१.५.७। [७] जय—जीतो। जि [जीतना, भ्वादि] + लोट् म० १। छान्दस दीर्घ।

८०. दुर्विचारों का भी संक्रमण

ऋणाद् ऋणमिव संनयन्, कृत्यां कृत्याकृतो गृहम् ।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः, पृष्टीरपि शृणाञ्जन ॥

अथर्व० १९-४५-१

अन्वय—हे आञ्जन ! ऋणात् ऋणं संनयन् इव, कृत्याकृतः गृहं कृत्यां (संनयन्), चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीः अपि शृण ।

शब्दार्थ—(हे आञ्जन) हे अंजन !, (ऋणात्) ऋण लेकर, (ऋणम्) ऋण को, (संनयन् इव) जैसे उतारते हैं, (कृत्याकृतः) अभिचार प्रयोग करने वाले के, (गृहम्) घर, (कृत्याम्०) अभिचार प्रयोग को ले जाते हुए, (चक्षुर्मन्त्रस्य) आँख से टोटका या अनिष्ट कार्य करने वाले, (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाले, दुर्जन के, (पृष्टीः अपि) पसलियों को भो, (शृण) तोड़ दे ।

हिन्दी अर्थ—हे अंजन ! जिस प्रकार ऋण लेकर ऋण उतारते हैं, उसी प्रकार अभिचार प्रयोग करने वाले के घर अभिचार प्रयोग लौटा दो। आंख से टोटका करने वाले दुष्ट की पसलियाँ भी तोड़ दो ।

Eng. Tr.—O collyrium! As one repays debt by taking a debt, similarly return the magic to the house of the sorcerer. May you crush the ribs of the wicked, who spells a magic by his eyes.

अनुशीलन--इस मंत्र में स्पष्ट किया गया है कि विचारों का भी संक्रमण (Transference of thoughts) होता है। एक व्यक्ति के विचार दूसरे व्यक्ति तक भेजे जा सकते हैं ।

जिस प्रकार गुरु या पिता आदि का आशीर्वाद शिष्य या पुत्र को प्राप्त होता है, उसी प्रकार दुर्जन के अभिचार-प्रयोग भी संबद्ध व्यक्ति तक पहुँचते हैं । मंत्र में कुटिल एवं कपटी व्यक्ति को 'दुर्हार्द्' दुष्ट हृदय वाला कहा है । वह आँख

से दुष्ट भावनाओं को संक्रमित करता है। इसको 'बुरी आँख से देखना' कहा जाता है। बुरी दृष्टि से देखने से संवद्ध व्यक्ति प्रभावित होता है और वह रोगी या कष्ट-पीडित हो जाता है।

इस प्रकार के अभिचारों या कुप्रयोगों का क्या उपचार है? अभिचार या कृत्याप्रयोगों के लिए सामान्य नियम है कि ये अल्पशक्ति वाले पर ही सफल होते हैं। मंत्र में कहा गया है कि ऐसा प्रयोग करने वाले की हड्डी तोड़ दो। इसका अभिप्राय है कि अपने अन्दर आत्मबल या मनोबल को विकसित किया जाए। जहाँ मनोबल प्रबल है, वहाँ किसी प्रकार का दुर्भाव या अभिचार का प्रयोग सफल नहीं होता।

टिप्पणी – (१) **संनयन्**—लौटाते हुए। सम्+नी (लौटना, भ्वादि)+शतृ प्र० १। (२) **चक्षुर्मन्त्रस्य**—आँख से टोना करने वाले के। (३) **दुर्हार्दः**—दुष्ट, दुर्जन। दुर्+हार्द्+ष० १। (४) **शृण**+तोड़ दे। शॄ (तोड़ना, क्र्यादि)+लोट् म० १। शृणीहि के स्थान पर शृण है।

८१. विचारभेद से प्रवृत्तिभेद

नानानं वा उ नो धियो, वि व्रतानि जनानाम्।
तक्षा रिष्टं रुतं भिषग्, ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छति॥

ऋग्० ९-११२-१

अन्वय—नः धियः वै उ नानानम्, जनानां व्रतानि वि। तक्षा रिष्टम्, भिषक् रुतम्, ब्रह्मा सुन्वन्तम् इच्छति।

शब्दार्थ—(नः) हमारी, (धियः) बुद्धियां, विचार, (वै उ) वस्तुतः, (नानानम्) नाना प्रकार के हैं। (जनानाम्) लोगों के, (व्रतानि) कर्म, (वि) विविध प्रकार के हैं। (तक्षा) बढ़ई, (रिष्टम्) टूटा-फूटा फर्नीचर, लकड़ी काटना, (भिषक्) वैद्य, (रुतम्) रुग्ण को, (ब्रह्मा) ब्राह्मण, पंडित, (सुन्वन्तम्) सोमरस निकालने वाले को, (इच्छति) चाहता है।

हिन्दी अर्थ—हमारी बुद्धियाँ नाना प्रकार की हैं। लोगों के कर्म विविध प्रकार के हैं। वढ़ई लकड़ी फाड़ने का काम, वैद्य रोगी को और ब्राह्मण सोमरस निकालने वाले (यजमान) को चाहता है।

Eng. Tr.—Our thoughts are of various kinds. The actions of the persons are varied. The carpenter wants to cut the wood, a physician wants a patient and a priest wants a sacrificer.

अनुशीलन—इस मंत्र में स्पष्ट किया गया है कि मानव की विभिन्न प्रवृत्तियों का मूल विचार है। विचारों की विविधता कार्य की विविधता में परिणत होती है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति का झुकाव (Inclination) एक प्रकार का नहीं होता है। कोई विद्या, कोई संगीत, कोई नृत्य, कोई शारीरिक पुष्टता और कोई शिल्प की ओर प्रवृत्त होता है। रुचिभेद से प्रवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न हो जाती हैं।

इन प्रवृत्तियों में सत्त्व, रजस् और तमस् गुणों का प्रभाव रहता है। सत्त्व गुण वाले शिक्षा, विद्या, कला, धार्मिक कृत्य आदि में प्रवृत्त होते हैं। रजोगुण वाले युद्ध, शस्त्रास्त्रविद्या आदि में प्रवृत्त होते हैं। तमोगुण वाले सामान्य शिल्प, शारीरिक श्रम, सेवा आदि कार्यों में प्रवृत्त होते हैं। मानव के सहज विचार उसे रुचि के अनुकूल कार्यों में प्रवृत्त करते हैं। इस प्रकार विचारों की विभिन्नता मानव की वृत्तियों (पेशों) में भेद करके समाज का निर्माण करती है।

टिप्पणी—(१) **नानानम्**—नाना प्रकार के। नाना+न। (२) **तक्षा**—बढ़ई। तक्षन्+प्र० १। (३) **रिष्टम्**—लकड़ी काटना, टूटा फर्नीचर मरम्मत करना। रिष्+क्त (त)। (४) **रुतम्**—रुग्ण।

८२. संकल्पशक्ति से सृष्टि-उत्पत्ति

कामो जज्ञे प्रथमो
नैनं देवा आपुः पितरो न मर्त्याः।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महान्-
तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि॥

अथर्व० ९.२.१९

अन्वय—कामः प्रथमः जज्ञे। देवाः एनं न आपुः। पितरः मर्त्याः न (आपुः)। ततः त्वं ज्यायान् असि, विश्वहा महान् (असि)। हे काम ! तस्मै ते इत् नमः कृणोमि।

शब्दार्थ—(कामः) संकल्पशक्ति, इच्छाशक्ति, (प्रथमः) सबसे पहले, (जज्ञे) उत्पन्न हुई। (देवाः) देवगण, (एनम्) इसको, (न) नहीं, (आपुः) पा सके। (पितरः) पितृगण, विद्वान्, (मर्त्याः) मनुष्य, (न०) नहीं पा सके। (ततः) इसलिए, (त्वम्) तू, (ज्यायान् असि) बड़े या बढ़कर हो। (विश्वहा) सदा, (महान् असि) महान् हो। (हे काम !) हे काम या संकल्प-शक्ति, (तस्मै) उस, (ते इत्) तुझको ही, (नमः) नमस्कार, (कृणोमि) करता हूँ।

हिन्दी अर्थ—काम (संकल्पशक्ति) सबसे पहले उत्पन्न हुआ। इसको देवता नहीं पा सके। पितृगण और मनुष्य भी इसे नहीं पा सके। अतः तुम बड़े और सदा महान् हो। हे काम ! ऐसे तुमको ही हम नमस्कार करते हैं।

Eng. Tr.—The will-power was born first of all. Neither Gods, nor fore-fathers, nor mortal beings could take hold of him. Therefore you are senior and ever-glorious. O Will-power, we pay respects to you alone.

अनुशीलन—इस मंत्र में काम शब्द के द्वारा संकल्पशक्ति (Thought-power) का वर्णन किया गया है। संकल्पशक्ति को ही ईक्षण भी कहते हैं। इस संकल्पशक्ति का महत्त्व अवर्णनीय है। इसमें सब कुछ कर सकने की शक्ति है। यह महान् है, अनिर्वचनीय है, अक्षय शक्ति का भण्डार है। इसकी शक्ति का पूरा रहस्य देवता और मनुष्य कोई नहीं पा सके हैं।

यह संकल्पशक्ति ही है, जिसके द्वारा परमात्मा इस महान् सृष्टि को उत्पन्न कर सका है। सृष्टि का प्रारम्भ संकल्पशक्ति से है। संकल्पशक्ति ही सृष्टि की कर्त्री, धर्त्री और संहर्त्री है।

मानव का व्यक्तित्व (Personality) भी संकल्पशक्ति पर निर्भर है। यही उसके जीवन की निर्मात्री है। शैशव काल में जिस संकल्प को लेकर व्यक्ति प्रवृत्त होता है, उसी प्रकार उसका जीवन बनता या बिगड़ता जाता है। संकल्प-शक्ति जीवन की आधारशिला है। अतएव इसका महत्त्व बताते हुए मंत्र में इसे नमस्कार किया गया है।

टिप्पणी—(१) जज्ञे—उत्पन्न हुआ। जन् (पैदा होना, दिवादि) + लिट् प्र० १। (२) आपुः—पाया। आप् (पाना, स्वादि) + लिट् प्र० ३। (३) शेष के लिए मंत्र ५९ की टिप्पणी देखें।

८३. संकल्पशक्ति सबसे महान्

यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा
यावदापः सिष्यदुर्यावदग्निः।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महान्-
तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥

अथर्व० ९.२.२०

अन्वय—यावती वरिम्णा द्यावापृथिवी, यावत् आपः सिष्यदुः, यावत् अग्निः, ततः त्वं ज्यायान् असि, विश्वहा महान् (असि)। हे काम! तस्मै ते इत् नमः कृणोमि।

शब्दार्थ—(यावती) जितनी, (वरिम्णा) विस्तार में, (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी हैं, (यावत्) जितना, (आपः) जल, (सिष्यदुः) बहता है, फैला है, (यावत्) जहाँतक, (अग्निः) आग फैली हुई है, (ततः) उससे, (त्वम्) तुम, (ज्यायान्) बड़े, (असि) हो, (विश्वहा) सदा, (महान्) महान् हो। (हे काम!) हे काम या संकल्प शक्ति!, (तस्मै) उस, (ते इत्) तुझको ही, (नमः) नमस्कार, (कृणोमि) करता हूँ।

हिन्दी अर्थ—जितना विस्तार में द्युलोक और पृथिवी हैं, जितना जल फैला हुआ है और जितनी आग फैली हुई है, उससे बड़े तुम हो। तुम सदा महान् हो। ऐसे तुमको ही मैं नमस्कार करता हूँ।

Eng. Tr.—As far as the heaven and earth are extended; as far as the rivers flow; as far as the fire extends, O Will-power! you extend more than that. You are always great. I pay my homage to you alone.

अनुशीलन—इस मंत्र में संकल्प-शक्ति (Thought-power) को काम शब्द से कहा गया है। इस संकल्प-शक्ति का महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि जहाँ तक पृथिवी और द्युलोक हैं, जहाँ तक समुद्र और अग्नि फैले हैं, उससे भी आगे संकल्प शक्ति है। संकल्प शक्ति अनन्त है। उसका आदि और अन्त अज्ञात है, अतः वह अनिर्वचनीय है।

संकल्प-शक्ति में क्या गुण हैं ? संकल्पशक्ति ऊर्जा है। इसमें कर्तृत्व है। यह निर्माण का कार्य करती है। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र में जो कुछ रचनात्मक कार्य हो रहा है, उसके मूल में संकल्पशक्ति है। जीवन में अभ्युदय और निःश्रेयस (मोक्ष) को सिद्ध करने वाली यही संकल्प शक्ति है। इसका आश्रय लेकर ही ज्ञानी, विज्ञानवेत्ता, ऋषि और सिद्ध होते हैं।

टिप्पणी—(१) **वरिम्णा**—विस्तार में। उरु + इमन् = वरिमन् + तृ० १। (२) **सिष्यदुः**—बहीं। स्यन्द् (बहना, भ्वादि) + लिट् प्र० ३।

८४. संकल्पशक्ति मन की विभूति

कामस्तदग्रे समवर्तत
मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
स काम कामेन बृहता सयोनी
रायस्पोषं यजमानाय धेहि॥

अथर्व० १९.५२.१

अन्वय—तत् अग्रे कामः सम् अवर्तत । यत् मनसः प्रथमं रेतः आसीत् । हे काम ! स (त्वम्) बृहता कामेन सयोनिः यजमानाय रायस्पोषं धेहि ।

शब्दार्थ—(तत् अग्रे) तो सबसे पहले, (कामः) संकल्पशक्ति या विचार-शक्ति, (सम् अवर्तत) उत्पन्न हुई । (यत्) जो, (मनसः) मन का, (प्रथमं रेतः) प्रथम बीजरूप या सारभाग, (आसीत्) था । (हे काम !) हे संकल्प-शक्ति !, (स त्वम्) वह तू, (बृहता कामेन) महान् संकल्पशक्तिरूप परमात्मा से, (सयोनिः) समकारण या समानरूप होकर, (यजमानाय) यजमान को, (रायस्पोषम्) धन की समृद्धि, (धेहि) रखो, दो ।

हिन्दी अर्थ—सबसे पहले संकल्पशक्ति उत्पन्न हुई । यह मन का प्रथम बीज था । हे संकल्पशक्ति ! तू महान् संकल्परूप परमात्मा से एकरूप होकर यजमान को धन-समृद्धि दे ।

Eng. Tr.—The Will-power was born first of all. It was the essence of mind. O Will-power ! Having union with the Supreme Being bestow abundance of wealth on the sacrificer.

अनुशीलन—इस मंत्र में मनोविज्ञान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बात कही गई है कि काम या संकल्पशक्ति मन का रेतस् (Essence) है । मन का यदि सारभाग निकाला जाए तो वह संकल्पशक्ति है । मन का समस्त कर्तृत्व इसी संकल्पशक्ति पर निर्भर है ।

सृष्टि का प्रारम्भ इसी संकल्पशक्ति से है । इस संकल्पशक्ति के द्वारा परमा-णुओं का संयोजन और वियोजन होता है । उससे ही सृष्टि की रचना होती है ।

मंत्र में निर्देश है कि इस मन का भी संचालक एक और महान् शक्ति है । वह शक्ति है परमात्मा । इसको महान् शक्ति या Supreme soul कह सकते हैं । जिस प्रकार सौर मंडल का संचालक सूर्य है, उसी प्रकार महान् सृष्टि का संचालक महान् शक्ति या परमात्मा है । जिस प्रकार सौर मंडल सूर्य से

ऊर्जा प्राप्त करता है, उसी प्रकार समस्त विश्व उस महान् शक्ति से ऊर्जा प्राप्त करता है।

टिप्पणी—(१) समू अवर्तत—उत्पन्न हुआ। सम्+वृत् (होना, भ्वादि)+लङ् प्र० १। (२) धेहि—रखो, दो। धा (रखना, जुहोत्यादि)+लोट् म० १।

८५. संकल्पशक्ति आग्नेय तत्त्व

आकूतिमग्निं प्रयुजꣳस्वाहा।
मनो मेधामग्निं प्रयुजꣳस्वाहा।
चित्तं विज्ञातमग्निं प्रयुजꣳस्वाहा।
वाचो विधृतिमग्निं प्रयुजꣳस्वाहा॥

यजु० ११.६६

अन्वय—आकूतिम् अग्निं प्रयुजं स्वाहा। मनः मेधाम् अग्निं प्रयुजं स्वाहा। चित्तं विज्ञातम् अग्निं प्रयुजं स्वाहा। वाचः विधृतिम् अग्निं प्रयुजं स्वाहा।

शब्दार्थ—(आकूतिम् अग्नि०) संकल्परूपी प्रेरक अग्नि के लिए आहुति है। (मनः मेघाम्०) मन और मेघारूपी प्रेरक अग्नि के लिए आहुति है। (चित्तं विज्ञातम्०) चित्त और ज्ञानरूपी प्रेरक अग्नि के लिए आहुति है। (वाचः विधृतिम्०) वाक्शक्ति के संरक्षणरूपी प्रेरक अग्नि के लिए आहुति है।

हिन्दी अर्थ—संकल्परूपी प्रेरक अग्नि के लिए आहुति है। मन और मेधारूपी प्रेरक अग्नि के लिए आहुति है। चित्त और ज्ञानरूपी प्रेरक अग्नि के लिए आहुति है। वाणी के संरक्षणरूपी प्रेरक अग्नि के लिए आहुति है।

Eng. Tr.—The oblation is offered to the stimulating fire in the form of thought. The oblation is offered to the stimulating fire in the form of mind and intellect. The oblation is offered to

the stimulating fire in the form of thinking and knowledge. The oblation is offered to the impelling fire in the form of protection of speech.

अनुशीलन—इस मंत्र में ऊर्जा के स्रोत तत्त्वों का उल्लेख है। इनको अग्नि या आग्नेय तत्त्व कहा गया है। अग्नि का गुण है—ऊर्जा देना, प्रकाश देना, गति देना और दोषों को नष्ट करना।

ऊर्जा के स्रोत तत्त्व हैं—संकल्पशक्ति, मन, चित्त और वाणी। ये प्रेरणा और गति देते हैं, अतः इन्हें प्रयुज् कहा गया है। आकूति या संकल्पशक्ति किसी विशेष लक्ष्य की ओर प्रवृत्त करती है। यही इसकी प्रेरणा (Motivation) है। लक्ष्य की सिद्धि के लिए ऊर्जा देने के कारण यह मानस अग्नि है।

मन संकल्प और विकल्प का साधन है। कर्तव्य कर्मों को स्मरण कराना मन का धर्म है। धारणाशक्ति (Power of retention) को मेधा कहते हैं। मन और मेधा आग्नेय तत्त्व हैं। ये मनुष्य को प्रेरणा देते हैं।

चित्त स्मृति (Remembering) का साधन है। यह पूर्वज्ञात को स्मृति के द्वारा उपस्थित करता है, अतः यह ज्ञान का साधन है। यह भी आग्नेय तत्त्व है और प्रेरक है।

वाक् तत्त्व भी आग्नेय तत्त्व है। यह ऊर्जा का स्रोत है। वाक्तत्त्व में धारणात्मक शक्ति है, अतः उसे विधृति कहा है। वाणी में ओजस्विता आग्नेय तत्त्व के कारण है। वाणी निर्जीव को सजीव, मन्द को प्रगतिशील और हतोत्साह को शक्तिसंपन्न बना देती है। यह इसका आग्नेय गुण है।

टिप्पणी—(१) **आकूतिम्**—संकल्पशक्ति। (२) **प्रयुजम्**—प्रेरक। (३) **मेधाम्**—बुद्धि की धारणात्मक शक्ति मेधा है। (४) **विज्ञातम्**—ज्ञात तत्त्व, ज्ञान। (५) **वाचः०**—वाणी का संरक्षण भी प्रेरक अग्नि का गुण है।

८६. संकल्पशुद्धि सर्वोत्तम यज्ञ

यत् पुरुषेण हविषा, यज्ञं देवा अतन्वत।
अस्ति नु तस्मादोजीयो, यद् विहव्येनेजिरे ॥

अथर्व० ७.५.४

अन्वय—यत् देवाः पुरुषेण हविषा यज्ञम् अतन्वत । तस्मात् ओजीयः अस्ति नु, यद् विहव्येन ईजिरे ।

शब्दार्थ—(यत्) जो, (देवाः) देवों ने, (पुरुषेण) पुरुष या जीवात्मारूपी, (हविषा) हवि से, (यज्ञम्) यज्ञ, (अतन्वत) फैलाया, किया । (तस्मात्) उससे, (ओजीयः) अधिक ओजस्वी या महत्त्वपूर्ण, (अस्ति नु) है, (यत्) जो, (विहव्येन) बिना हवि के अर्थात् ज्ञानयोग से, (ईजिरे) यज्ञ किया ।

हिन्दी अर्थ—देवों ने जीवात्मारूपी हवि से जो आत्मसमर्पणरूपी यज्ञ किया, उससे अधिक महत्त्वपूर्ण वह यज्ञ है, जो बिना हवि के किया जाता है, अर्थात् ज्ञानयज्ञ उससे अधिक फलप्रद है ।

Eng. Tr.—The Gods performed the sacrifice with the Individual soul as an oblation. It is more beneficial to perform a sacrifice with the knowledge only.

अनुशीलन— इस मन्त्र में चेतना के ३ रूपों—प्रज्ञा, भावना और संकल्पशक्ति का प्रयत्न—में से तृतीय संकल्पशक्ति का प्रयत्न (Conation) का वर्णन है। इसमें इच्छा, प्रेरणा, अवरोध, नियन्त्रण और चरित्र आते हैं ।

मन्त्र का कथन है कि यज्ञ के दो रूप हैं—१. हवियुक्त और २. हविरहित। भौतिक दृष्टि से हवियुक्त यज्ञ का महत्त्व है। यह वायुशुद्धि, दोषनाशन और स्वार्थत्याग का साधन है। परन्तु दूसरा यज्ञ मानस यज्ञ या ज्ञानयज्ञ है। इसमें हवि की आवश्यकता नहीं होती है। मन के विचारों की शुद्धि से आत्मा की शुद्धि

होती है और आत्मा की शुद्धि से तत्त्वज्ञान, चारित्रिक उन्नति और प्रातिभ ज्ञान की प्राप्ति होती है। इसको मानस यज्ञ, संकल्पशुद्धि या ज्ञानयज्ञ कहते हैं। इस मानस यज्ञ से विचारों में दृढ़ता, विवेक की परिपक्वता और चरित्र में पवित्रता आती है। अतएव मन्त्र का कथन है कि यह हविरहित यज्ञ अधिक शक्तिशाली और ओजस्वी है। भगवद्गीता में भी यह भाव स्पष्ट किया गया है कि द्रव्यमय यज्ञ से ज्ञानयज्ञ अधिक उत्कृष्ट है।

श्रेयान् द्रव्यमयाद् यज्ञाद् ज्ञानयज्ञः परन्तप। गीता ४.३३

टिप्पणी—(१) अतन्वत—फैलाया, किया। तन् (फैलाना, तनादि) + लङ् प्र० ३। (२) ओजीयः—अधिक ओजस्वी। ओजस्विन् + ईयस्। विन् और अस् का लोप। (३) ईजिरे—यज्ञ किया। यज् (यज्ञ करना, भ्वादि, आ०) + लिट् प्र० ३।

८७. संकल्पशक्ति से अशुभ-निवारण

यन्मे मनसो न प्रियं न चक्षुषो
यन्मे बभस्ति नाभिनन्दति।
तद् दुष्वप्न्यं प्रति मुञ्चामि सपत्ने
कामं स्तुत्वोदहं भिदेयम्॥

अथर्व० ९.२.२

अन्वय—यत् मे मनसः न प्रियम्. न चक्षुषः (प्रियम्), यत् मे बभस्ति, न अभिनन्दति। तत् दुष्वप्न्यं सपत्ने प्रति मुञ्चामि। अहं कामं स्तुत्वा उद् भिदेयम्।

शब्दार्थ—(यत्) जो, (मे) मेरे, (मनसः) मन को, (न) नहीं, (प्रियम्) प्रिय है, (न चक्षुषः०) और न आँखों को प्रिय है। (यत्) जो, (मे) मुझको, (बभस्ति) डराता है, (न) नहीं, (अभिनन्दति) आनन्दित करता है। (तत्) उस, (दुष्वप्न्यम्) बुरे स्वप्न की, (सपत्ने) शत्रु पर, (प्रति मुञ्चामि) छोड़ता हूँ या डालता हूँ। (अहम्) मैं, (कामम्) संकल्पशक्ति की, (स्तुत्वा) स्तुति करके, (उद् भिदेयम्) उन्नत होऊँ।

हिन्दी अर्थ—जो मेरे मन को और मेरी आँखों को प्रिय नहीं है, जो मुझे डराता है और आनन्दित नहीं करता है, उस बुरे स्वप्न को मैं अपने शत्रु पर डालता हूँ। मैं संकल्पशक्ति की स्तुति करके उन्नत होता हूँ।

Eng. Tr.—That evil dream, which is not agreeable to my mind and to my eyes; which frightens me and does not give any pleasure to me, I throw it on my enemies I arise taking help (lit. praying) of the will-power.

अनुशीलन—इस मंत्र में संकल्पशक्ति के प्रयत्न (conation) के दो गुणों का वर्णन किया गया है। ये हैं—१. अशुभ निवारण और २. अभ्युदय की प्राप्ति।

संकल्पशक्ति एक साथ दो कार्य करती है। एक ओर वह दूषित तत्त्वों को नष्ट करती हैं और दूसरी ओर उन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है। जिस प्रकार अग्नि दूषित तत्त्वों को नष्ट करता है और प्रकाश का मार्ग प्रशस्त करता है, उसी प्रकार संकल्पशक्ति भी दुर्विचारों के नाश से दुःखद स्वप्नों आदि को नष्ट करती है और मन को पुष्ट करके उन्नति की ओर अग्रसर करती है।

मंत्र में बुरे स्वप्नों को अशुभ अप्रिय और भयावह कहा है। बुरे स्वप्न क्यों आते हैं ? स्वप्न क्या है ? यह विचारणीय है। मनुष्य जागृत अवस्था में जो कुछ देखना सुनता या करता है, वे भाव सूक्ष्म रूप में आत्मा में विद्यमान रहते हैं। निद्रा की अवस्था में उसीप्रकार के शुभ या अशुभ स्वप्न दिखाई देते हैं। स्वप्न ज्ञात और अज्ञात कर्मों का एक प्रकार से मानसिक लेखा-जोखा है। अशुभ स्वप्न अनायास नहीं आते हैं। हमारे अन्तरंग भाव मन में सदा विद्यमान रहते हैं। हिंसा, क्रूरता, दोषदर्शन, पाप, अनाचर, भ्रष्टाचार निद्रा की अवस्था में उद्बुद्धरूप में हमारे सामने आते हैं। इनसे भय, विषाद, खेद आदि होता है। इनको दूर करने का उपाय है—संकल्पशुद्धि। संकल्पशुद्धि से अशुभ स्वप्न दूर होते हैं और उन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है।

टिप्पणी—(१) **बभस्ति**—डराता है। भस् (डराना, जुहोत्यादि) + लट् प्र० १। (२) **अभिनन्दति**—खुश करता है। अभि + नन्द् (प्रसन्न करना, भ्वादि)

+ लट् प्र० १। (३) प्रति मुञ्चामि—डालता हूँ। प्रति + मुच् (छोड़ना, तुदादि) + लट् उ० १। (४) उद्भिदेयम्—उन्नत होऊं, उठूं। उद् + भिद् (उठना) + विधिलिङ् उ० १।

८८. तीव्र संकल्प से अभीष्टसिद्धि

य उशता मनसा सोमम‍स्मै
सर्वहृदा देवकामः सुनोति।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति
प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति॥

ऋग्० १०.१६०.३

अन्वय—यः देवकामः उशता मनसा सर्वहृदा अस्मै सोमं सुनोति, इन्द्रः तस्य गाः न परा ददाति। अस्मै चारुं प्रशस्तम् इत् कृणोति।

शब्दार्थ—(यः) जो, (देवकामः) देवभक्त, आस्तिक, (उशता) चाहते हुए, (मनसा) मन से, (सर्वहृदा) पूरे हृदय से, (अस्मै) इस इन्द्र के लिए, (सोमम्) सोमरस, (सुनोति) निकालता है, (इन्द्रः) इन्द्र, परमात्मा, (तस्य) उसकी, (गाः) गायों को, इन्द्रियों को, (न) नहीं, (परा ददाति) हरता है, नष्ट करता है। (अस्मै) इसके लिए, (चारुम्) सुन्दर, (प्रशस्तम् इत्) प्रशंसनीय, हितकर कार्य ही, (कृणोति) करता है।

हिन्दी अर्थ—जो आस्तिक व्यक्ति दृढ़ संकल्पयुक्त मन एवं पूरे हृदय से इस इन्द्र (परमात्मा) के लिए सोमरस निकालता है, परमात्मा उसकी गायों (इन्द्रियों) को हरण नहीं करता, अपितु उसके लिए सुन्दर और हितकर कार्य ही करता है।

Eng. Tr.—A devout person, who earnestly and sincerely presses Soma-juice for Indra (i. e. the Supreme Being), is not deprived of his cows (i. e. Sense-organs) by the Supreme Being. On the other hand He blesses him with lovely pleasure.

अनुशीलन--इस मंत्र में तीव्र संकल्प का महत्त्व बताया गया है। तीव्र संकल्प क्षय का निरोध करता है और इष्ट की प्राप्ति कराता है।

इस मन्त्र में गो शब्द इन्द्रिय वाचक है। यह ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का बोधक है। जिसमें संकल्प की तीव्रता और भावशुद्धि है, उसमें आन्तरिक शक्ति की वृद्धि होती है। यह आन्तरिक शक्ति की वृद्धि ही इन्द्रियों की शक्ति में ह्रास या न्यूनता नहीं आने देती है। इसको ही मंत्र में कहा गया है कि परमात्मा उसकी गायों (इन्द्रियों) को नहीं हरता है। इन्द्रियों की शक्ति में न्यूनता न आने देने का उपाय है—संकल्प की तीव्रता। आधुनिक चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से इसे Auto-Suggestion की प्रक्रिया कहते हैं। इसमें मानस संकल्पों के द्वारा ही सभी रोगों की चिकित्सा की जाती है।

इस संकल्पशुद्धि का दूसरा लाभ है—इष्ट की प्राप्ति, नीरोगता और निष्कंटक मार्ग। संकल्प शक्ति के द्वारा दोषों के बीजों को नष्ट कर देने से मानव का मार्ग स्वयं प्रशस्त हो जाता है। दोष, दुर्गुण और दुष्कर्म ही इष्टसिद्धि में बाधक होते हैं। तीव्र संकल्प से ये भस्मसात् होते हैं। इनके नाश से सभी प्रकार की सफलता प्राप्त होती है।

टिप्पणी—(१) **उशता**—चाहते हुए। वश् (चाहना, अदादि) + शतृ = उशत् + तृ० ३। (२) **सुनोति**—निचोड़ता है। सु (रस निकालना, स्वादि) + लट् प्र० १। (३) **पराददाति**—हरण करता है, लेता है। परा + दा (लेना, जुहोत्यादि) + लट् प्र० १। (४) **कृणोति**—करता है। कृ (करना, स्वादि) + लट् प्र० १।

८९. शिव संकल्प से आत्म-ज्ञान

यास्ते विशस्तपसः संबभूवु-
र्वत्सं गायत्रीमनु ता इहागुः।
तास्त्वा विशन्तु मनसा शिवेन
संमाता वत्सो अभ्येतु रोहितः॥

अथर्व० १३.१.१०

अन्वय—ते तपसः याः विशः संबभूवुः। ताः इह वत्सं गायत्रीम् अनु अगुः। ताः शिवेन मनसा त्वा विशन्तु। संमाता रोहितः वत्सः अभि एतु।

शब्दार्थ—(ते) तेरे, (तपसः) तप से, (याः) जो, (विशः) प्रजाएँ, (संबभूवुः) उत्पन्न हुईं। (ताः) वे, (इह) इस संसार में, (वत्सं गायत्रीम् अनु) बछड़े के तुल्य गायत्री के पीछे, (अगुः) चलीं। (ताः) वे प्रजाएँ, (शिवेन) पवित्र, (मनसा) मन से, (त्वा) तुझको, (विशन्तु) प्रवेश करें, पावें। (संमाता) माता अर्थात् ब्रह्मशक्ति के साथ, (वत्सः रोहितः) सूर्यरूपी बछड़ा, (अभ्येतु) हमें प्राप्त हो।

हिन्दी अर्थ—तेरे तप से जो प्रजाएँ उत्पन्न हुईं; वे यहाँ गायत्री रूपी बछड़े के पीछे चलीं। वे प्रजाएँ पवित्र मन से तुझमें प्रवेश करें। (ब्रह्मशक्तिरूपी) माता के सहित वत्स रोहित (सूर्य) हमें प्राप्त हो।

Eng. Tr.—The progeny, which sprung from your penance, followed the calf-like Gayatri. May they approach you with their pious hearts. May the Calf-like Rohita (Sun), along with the mother (i.e. Supreme Power or ब्रह्मशक्ति), come to us.

अनुशीलन—इस मंत्र में 'मनसा शिवेन' के द्वारा संकल्प शुद्धि को आत्मज्ञान का साधन बताया गया है। पवित्र मन से आत्मा में प्रवेश करने से ब्रह्मशक्ति के साथ सौर शक्ति प्राप्त होती है।

यह संसार परमात्मा के ज्ञानरूपी तप से उत्पन्न हुआ है। इस संसार के अभ्युदय के दो प्रकार मंत्र में वर्णन किए गए हैं। ये हैं—१. गायत्री का अनुसरण, २. शिव संकल्प।

गायत्री क्या है ? गायत्री का अर्थ है—प्राणरक्षक तत्त्व। गय या गाय का अर्थ है—प्राण, त्र या त्री–रक्षक। गायत्री सौर ऊर्जा का प्रतीक है। यह मानव में

सौर ऊर्जा का संचार करती है, अतः इसे सावित्री और वेदमाता आदि कहा जाता है। गायत्री का अनुसरण और उसका जप सौर ऊर्जा प्रदान करके बुद्धि को शुद्ध करता है। बुद्धि की शुद्धि से मन पवित्र होता है और मन की पवित्रता से विचार शुद्ध होते हैं।

मंत्र में 'मनसा शिवेन' के द्वारा इसी विचार-शुद्धि का निर्देश है। विचार-शुद्धि आत्मज्ञान और ब्रह्मप्राप्ति का साधन है। इसको ही शास्त्रीय भाषा में निःश्रेयस या मोक्ष का साधन माना गया है। विचारों की शुद्धि से दूषित कर्मों का नाश होता है और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

टिप्पणी—(१) संबभूवुः—उत्पन्न हुईं। सम्+भू (उत्पन्न होना, भ्वादि)+ लिट् प्र० ३। (२) अगुः—गईं। इ (गा, जाना, अदादि)+लुङ् प्र० ३। इ को गा आदेश। (३) विशन्तु—प्रवेश करें। विश् (प्रवेश करना, तुदादि)+ लोट् प्र० ३। (४) अभि एतु—आवे, प्राप्त हो। अभि+इ (पास आना, अदादि)+लोट् प्र० १।

९०. चेतना का मूल वाक्तत्त्व

वशा माता राजन्यस्य, वशा माता स्वधे तव।
वशाया यज्ञ आयुधं, ततश्चित्तमजायत॥

अथर्व० १०.१०.१८

अन्वय—वशा राजन्यस्य माता, हे स्वधे! तव माता वशा, यज्ञः वशायाः आयुधम्, ततः चित्तम् अजायत।

शब्दार्थ—(वशा) वाग्देवी, वाक्तत्त्व, गाय, (राजन्यस्य) क्षत्रिय की, (माता) माता है। (हे स्वधे!) हे चेतना या ज्ञान, (तव) तेरी, (माता) माता, (वशा) वाक्तत्त्व है। (यज्ञः) यज्ञ, (वशायाः) वाक्तत्त्व का, (आयुधम्) शस्त्र है। (ततः) उससे, (चित्तम्) चेतना, (अजायत) उत्पन्न हुई।

हिन्दी अर्थ—वाग्देवी क्षत्रिय की माता है। हे चेतना, तेरी माता वाक्तत्त्व है। यज्ञ वाक्तत्त्व का शस्त्र है। उससे चेतना उत्पन्न हुई।

Eng. Tr.—The Goddess of speech is the mother of Kshatriyas. O Wisdom ! The goddess of Speech is your mother. The sacrifice is her weapan. Thence consciousness originated.

अनुशीलन—इस मंत्र में वाक् तत्त्व को वशा (गाय) कहा गया है, क्योंकि यह सबको अपने वश में रखता है। इस वाक्तत्त्व से ही चित्त या चेतना की उत्पत्ति हुई है।

शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि मन से भी सूक्ष्म तत्त्व वाक् है। वाक्तत्त्व ही शब्दब्रह्म या ब्रह्म है। यह विश्वव्यापिनी शक्ति है। यह ज्ञान और विज्ञान का आधार है। सृष्टि का क्रियाकलाप वाक्तत्त्व के द्वारा नियन्त्रित है। इससे ही चित्त या चेतना का जन्म हुआ है। वाक्तत्त्व समुद्र के तुल्य सर्वत्र व्याप्त है। मन उसकी अभिव्यक्ति का साधन है, अतः मन को वाक्तत्त्व का नेत्र कहा गया है। चेतना का स्रोत वाक्तत्त्व है, अतः उसे चेतना का जन्मदाता कहा गया है।

वाग् वै मनसो ह्रसीयसी। शतपथ ब्रा० १.४.४.७
वाग् वै समुद्रो मनः समुद्रस्य चक्षुः। तांड्य ब्रा० ६.४.७

टिप्पणी—(१) **वशा**—सबको अपने वश में रखने वाली, वाक्शक्ति। वशा का अर्थ गाय भी है। (२) **स्वधे**—हे स्वधा, चेतना या ज्ञान। (३) **अजायत**—उत्पन्न हुआ। जन् (जा, उत्पन्न होना, दिवादि) + लङ् प्र० १।

९१. मनोबल से पापी पर विजय

योऽस्मान् चक्षुषा मनसा चित्त्याकूत्या च
यो अघायुरभिदासात्।
त्वं तानग्ने मेन्यामेनीन् कृणु स्वाहा।

अथर्व० ५.६.१०

अन्वय—यः यः अघायुः अस्मान् चक्षुषा मनसा चित्त्या आकूत्या च अभिदासात् । हे अग्ने ! त्वं तान् मेन्या अमेनीन् कृणु, स्वाहा ।

शब्दार्थ—(यः यः) जो कोई, (अघायुः) पापी, (अस्मान्) हमें, (चक्षुषा) दृष्टि से, (मनसा) मन से, (चित्त्या) चित्त से, (आकूत्या च) और संकल्प या विचार से, (अभिदासात्) दास बनाना चाहे, (हे अग्ने !) हे अग्निरूप परमात्मन् ! (त्वम्) तू, (तान्) उनको, (मेन्या) अस्त्र या वज्र से, (अमेनीन्) निरस्त्र, (कृणु) कर दो, (स्वाहा) एतदर्थ आहुति देते हैं ।

हिन्दी अर्थ—जो पापी हमें आँख, मन, चित्त और विचारों से दास बनाना चाहता है, हे अग्निरूप परमात्मन् ! तुम उनको अस्त्र-प्रयोग से निरस्त्र कर दो । एतदर्थ हम आहुति देते हैं ।

Eng. Tr.—O Fire God ! May you make a malignant weaponless with your missiles, who wants to make us slave by means of his eyes. mind, knowledge and thoughts. We offer oblation for that purpose.

अनुशीलन—इस मन्त्र में मनोबल को एक प्रखर अस्त्र बताया गया है । मनोवल रक्षक और प्रहारक अस्त्र है । यह आत्मबल की वृद्धि करके मानव को सुरक्षित रखता है । यह प्रकाश और चेतना देता है । शारीरिक और आत्मिक शक्ति देता है । इस प्रकार यह रक्षक है ।

दूसरी ओर यह प्रहारक अस्त्र भी है । मन्त्र में कहा गया है कि जो पापी आक्रमण करता है या दास बनाना चाहता है, उसको इस प्रखर अस्त्र से समूल नष्ट कर दें । पापी के प्रहार का प्रभाव अक्षम दीन और हीनवृत्त पर ही होता है । जिसका मनोबल उद्बुद्ध है, उसे कोई नहीं जीत सकता है । दासता का अभिप्राय ही है हीनवृत्तिता । मनोबल इस हीनवृत्तिता या हीनभावना को समूल नष्ट करता है, अतः मनोबल को दासता का शत्रु बताया गया है । मनोबल व्यक्ति को जीवन में सर्वत्र विजयश्री दिलाता है ।

टिप्पणी—(१) अभिदासात्—दास बनाना चाहे। अभि+दास्+लेट् प्र० १। (२) अमेनीन्—अ-नहीं, मेनि—अस्त्र। अस्त्ररहित। (३) कृणु—करो। कृ (करना, स्वादि)+लोट् म० १।

९२. मन्त्रशक्ति से मन का उद्धार

इह तेऽसुरिह प्राण, इहायुरिह ते मनः।
उत् त्वा निर्ऋत्याः पाशेभ्यो, दैव्या वाचा भरामसि॥

अथर्व० ८.१.३

अन्वय—(हे पुरुष!) ते असुः इह, (ते) प्राणः इह, (ते) आयुः इह, ते मनः इह, त्वा निर्ऋत्याः पाशेभ्यः दैव्या वाचा उद् भरामसि।

शब्दार्थ—(हे पुरुष) हे पुरुष!, (ते) तेरा, (असुः) प्राण, ज्ञानेन्द्रियाँ, (इह) यहाँ रहें। (ते) तेरा, (प्राणः इह) प्राण अर्थात् ५ प्राण यहाँ रहें। (ते आयुः इह) तेरी आयु यहाँ रहे। (ते मनः इह) तेरा मन यहाँ रहे। (त्वा) तुझको, (निर्ऋत्याः) विनाश के, (पाशेभ्यः) जालों से, बन्धनों से, (दैव्या वाचा) दैवीवाणी से, वेदमन्त्रों से, (उद् भरामसि) उद्धार करते हैं।

हिन्दी अर्थ—हे पुरुष! तेरे प्राण (५ ज्ञानेन्द्रियाँ) यहाँ रहें, तेरे प्राण (५ प्राण) यहाँ रहें, तेरी आयु यहाँ रहे और तेरा मन यहाँ रहे। हम वेदमंत्रों के द्वारा विनाश के बन्धनों से तेरा उद्धार करते हैं।

Eng. Tr.—O Man! May you enjoy here longevity with your sense-organs, vital-airs, life and mental power. We save you from the snares of destruction by means of divine speech (i. e. Vedic stanzas).

अनुशीलन—इस मंत्र में मन्त्रशक्ति से मन के उद्धार का वर्णन है। मन्त्रशक्ति को 'दैवी वाक्' कहा गया है।

मन्त्रशक्ति क्या है ? मन्त्रशक्ति एक आन्तरिक शक्ति है, जिसको वेदमंत्रों आदि के द्वारा उद्बुद्ध किया जाता है। जिस प्रकार बीन आदि की ध्वनि सुनकर साँप उद्बुद्ध हो जाता है और अपने वास्तविक रूप में आ जाता है, उसी प्रकार मन्त्रशक्ति के द्वारा प्रसुप्त आन्तरिक शक्तियाँ जागृत हो जाती हैं और व्यक्ति अपनी असाधारण क्षमताओं को जान लेता है। यह प्रसुप्त भावनाओं का जागरण है।

इस मन्त्रशक्ति से सुप्त और लुप्त शक्तियाँ जागृत की जाती हैं। इससे निर्जीव और मृतप्राय में भी सजीवता आ जाती है। अनुत्साह पुनः उत्साह-रूप में परिणत हो जाता है। इसका ही मन्त्र में उल्लेख है कि विनाश के बन्धनों से बचाकर व्यक्ति में नवजीवन का संचार करते हैं।

टिप्पणी—(१) निर्ऋत्याः—विनाश के, संकट के। निर्ऋति + ष० १। (२) उद् भरामसि—उद्धार करते हैं। उद् + हृ (उद्धार करना, भ्वादि) + लट उ० ३। मः को मसि।

९३. ईर्ष्या से मानसिक पतन

अदो यत् ते हृदि श्रितं, मनस्कं पतयिष्णुकम्।
ततस्त ईर्ष्यां मुञ्चामि, निरूष्माणं दृतेरिव॥

अथर्व० ६.१८.३

अन्वय—(हे पुरुष !) ते हृदि अदः यद् पतयिष्णुकं मनस्कम्, ततः ते ईर्ष्यां निःमुञ्चामि, दृतेः ऊष्माणम् इव।

शब्दार्थ—(हे पुरुष !) हे मनुष्य !, (ते) तेरे, (हृदि) हृदय में, (अदः यत्) यह जो, (पतयिष्णुकम्) पतनशील, पतनोन्मुख, (मनस्कम्) मन है, (ततः) उससे, (ते) तेरी, (ईर्ष्याम्) ईर्ष्या को, (निःमुञ्चामि) पूर्णतया निकालता हूँ। (दृतेः) धोंकनी या मशक से, (ऊष्माणम् इव) जैसे गर्मी को निकालते हैं।

हिन्दी अर्थ—हे पुरुष ! तेरे हृदय में जो यह पतनोन्मुख मन है, उससे तेरी ईर्ष्या को उसीप्रकार बाहर निकालता हूँ, जैसे धोंकनी या मशक से गर्मी को ।

Eng. Tr.—O Man! The mind in your heart is on the verge of falling. From that your mind I take out malignity, just as the heat from the leather bag.

अनुशीलन—इस मन्त्र में ईर्ष्या को मनोबल का नाशक तत्त्व बताया गया है। ईर्ष्या मनुष्य के मनोबल को नष्ट करके उसे पतन की ओर ले जाती है।

ईर्ष्या क्या है ? दूसरे के उत्कर्ष, समृद्धि या गौरव को सहन न कर सकना। यह हीनभावनाजन्य मनोविकार है। यह ईर्ष्यालु व्यक्ति को अन्दर ही अन्दर घुन की तरह खाता रहता है। ईर्ष्या न अपने लिए हितकर है और न दूसरे के लिए। ईर्ष्या तामसी वृत्ति का एक अशिष्ट प्रदर्शन है। इससे अपने मनोबल के अतिरिक्त गुणों पर भी कुप्रभाव पड़ता है। ईर्ष्या मनोबल को तो नष्ट करती है, साथ ही शील विनय आदि गुणों को भी हानि पहुँचाती है। ईर्ष्या मनुष्य के खून को सुखाती है और उसकी बुद्धि को दूषित करती है। इसलिए मंत्र में कहा गया है कि मशक से गर्मी की तरह इसको अपने मन से बाहर निकालते हैं।

टिप्पणी—(१) **पतयिष्णुकम्**—पतन की ओर जाने वाला। पत् (गिरना, भ्वादि) + स्वार्थं में णिच् + इष्णु + क। (२) **निः मुञ्चामि**—निकालता हूँ। निस् + मुच् (छोड़ना, तुदादि) + लट् उ० १। (३) **दृतेः**—चमड़े की बनी हुई धोंकनी या मशक। दृति + पं० १।

९४. सद्‌विचार से ईर्ष्यानिवारण

अग्नेरिवास्य दहतो, दावस्य दहतः पृथक्।
एतामेतस्येर्ष्याम्, उद्नाग्निमिव शमय॥

अथर्व० ७.४५.२

अन्वय—अग्नेः इव दहतः अस्य, पृथक् दहतः दावस्य (इव), एतस्य एताम् ईर्ष्याम् उद्ना अग्निम् इव शमय।

शब्दार्थ - (अग्नेः इव) अग्नि के तुल्य, (दहतः) जलाने वाले, (अस्य) इस व्यक्ति की, (पृथक्) पृथक् पृथक्, प्रत्येक को, (दहतः) जलाने वाले, (दावस्य इव) दावाग्नि की तरह, (एतस्य) इस व्यक्ति की, (एताम्) इस, (ईर्ष्याम्) ईर्ष्या को, (उद्ना) जल से, (अग्निम् इव) अग्नि की तरह, (शमय) शान्त करो।

हिन्दी अर्थ—हे शुभ विचार ! अग्नि की तरह जलाने वाले तथा दावाग्नि की तरह प्रत्येक को जलाने वाले इस मनुष्य की इस ईर्ष्या को उसी प्रकार शान्त कर, जैसे जल से अग्नि को शान्त करते हैं।

Eng. Tr—(O Noble Thought !) May you remove the malice from this person, which is burning (harming) the others like the fire and like the forest-conflagration, as the fire is extinguished by means of water.

अनुशीलन—इस मंत्र में ईर्ष्या से होने वाली हानि का वर्णन करके उसके दूर करने का उपाय बताया गया है।

इस मंत्र में ईर्ष्या को जलाने वाली अग्नि बताया गया है। जिस प्रकार दावाग्नि वन के एक एक वृक्ष को जलाकर नष्ट कर देती है, उसी प्रकार ईर्ष्यारूपी अग्नि प्रत्येक ईर्ष्यालु को जलाकर भस्म बना देती है। ईर्ष्या अन्तःकरण में व्याप्त एक तमोगुणी वृत्ति है, जो मनुष्य के रक्त को दूषित कर देती है। यह मन और बुद्धि को दूषित करके मनोबल तथा विवेक को नष्ट करती है। अतः इसको सर्वथा त्याज्य बताया गया है।

इसको दूर करने का उपाय बताया गया है—सद्विचार। जिस प्रकार सामान्य अग्नि को या दावाग्नि को जल से शान्त किया जाता है, उसी प्रकार

शुभ विचारों से ईर्ष्या को शान्त किया जाता है। ईर्ष्या का विरोधी तत्त्व स्पर्धा है। स्पर्धा गुण है। प्रतियोगिता के द्वारा किसी से गुणों में बढ़ जाना स्पर्धा है। यदि ईर्ष्या के स्थान पर स्पर्धा को जागृत किया जाए और यह प्रयत्न किया जाए कि हम दूसरे से धन बल एवं समृद्धि में उत्कृष्ट हों तो इससे मनोबल जागृत होगा और उन्नति का मार्ग प्रशस्त होगा।

टिप्पणी—(१) दहतः—जलाने वाले। दह् (जलाना)+शतृ+ ष० १। (२) उद्ना—जल से। उदन् (उदक, जल)+तृ०१। (३) शमय—शान्त करो। शम् (शान्त होना, भ्वादि)+णिच्+लोट् म० १।

९५. पाप के कारण

न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा,
सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः।
अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे
स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ॥

ऋग्० ७.८६.६

अन्वय—हे वरुण ! स स्वः दक्षः न, सा ध्रुतिः। सुरा मन्युः विभीदकः अचित्तिः। कनीयसः उपारे ज्यायान् अस्ति। स्वप्नः च न इत् अनृतस्य प्रयोता।

शब्दार्थ—(हे वरुण) हे वरुण, हे न्यायकारी एवं व्यापक परमात्मन् ! (सः) वह, (स्वः दक्षः) अपनी योग्यता या बल, (न) नहीं है, (सा) वह, (ध्रुतिः) नियति या दैवगति है। (सुरा) मदिरा, (मन्युः) क्रोध, (विभीदकः) द्यूत का साधन पासा या गोटी, (अचित्तिः) अज्ञान, अविवेक, (कनीयसः) छोटे भाई के अर्थात् जीवात्मा के, (उपारे) समीप, (ज्यायान्) ज्येष्ठ भाई अर्थात् ईश्वर, (अस्ति) है। (स्वप्नः च न इत्) और स्वप्न भी नहीं, (अनृतस्य) असत्य या पाप का, (प्रयोता) दूर करने वाला है।

हिन्दी अर्थ—हे न्यायकारी परमात्मन् ! मनुष्य अपने बल के कारण पाप नहीं करता है, अपितु यह नियति है। पाप के कारण हैं—सुरा, क्रोध, द्यूत और अज्ञान । छोटे भाई जीवात्मा के पास बड़ा भाई परमात्मा मार्गदर्शक के रूप में रहता है। स्वप्न भी असत्य या पाप को नहीं रोक पाता है।

Eng. Tr.—O Varuna ! A man does not commit a sin on his own accord, but it is the destiny that makes him to do so. The causes of sins are--liquor, anger, gambling and ignorance The elder brother (i. e. God) resides besides the younger brother (i. e. the Individual soul) as a guide. Even the dream can not check the untruth or a sin.

अनुशीलन—इस मन्त्र में तीन बातों पर ध्यान आकृष्ट किया गया है। ये हैं—१. पाप के कारण, २. ईश्वर का शरीर में साक्षी के रूप में निवास, ३. स्वप्न का कर्तृत्व ।

मंत्र में पाप के ५ कारण बताए गए हैं—नियति, सुरा, क्रोध, द्यूत और अज्ञान । नियति का अभिप्राय है प्रारब्ध । पूर्वकृत कर्मों के आधार पर भावी जीवन चलता है। कुकर्मों के संस्कार मनुष्य को पापों में प्रवृत्त करते हैं। मदिरा-पान दुर्गुणों और पापों का मूल है। उन्मत्त व्यक्ति कोई भी पाप कर सकता है। क्रोध बुद्धि को विकृत कर देता है, अतः कर्तव्य-ज्ञान के अभाव में मनुष्य पापी हो जाता है। द्यूत में पराजय अनेक पापों को जन्म देता है। अज्ञान या कर्तव्य-बोध का अभाव मनुष्य को पापों की ओर ले जाता है।

पापों से बचने का उपाय बताया गया है कि मनुष्य के शरीर में परमात्मा है, वह मार्गदर्शक है। यदि जीवात्मा अपने बड़े भाई परमात्मा की शरण में जाता है और उससे कर्तव्य-बोध प्राप्त करता है तो वह सभी प्रकार के पापों से बच सकता है। परमात्मा की सर्वत्र व्यापकता का ज्ञान मानवमात्र को पापों से बचा सकता है। इसकी ओर ही मंत्र में संकेत किया गया है।

स्वप्न दृष्ट या श्रुत का मानसिक दर्शन है। स्वप्न मानवीय विचारों का अज्ञातरूप में चित्रण है। स्वप्न सामान्यतया पापों का न प्रवर्तक है और न निरोधक। पापों को रोकने का साधन एकमात्र ईशभक्ति या ईश्वरोपासना है। उससे मनोबल मिलता है। मनोबल पापों का निरोधक है।

टिप्पणी—(१) **ज्यायान्**—बड़ा भाई। परमात्मा जीवात्मा के समीप मार्ग-दर्शक एवं प्रेरक के रूप में रहता है। (२) **प्रयोता**—दूर रखने वाला। प्र+यु (हटाना)+तृ+प्र० १। स्वप्न भी पाप-प्रवृत्ति को हटाने में असमर्थ रहता है।

९६. पापी ही पाप-फल-भोक्ता

समित् तमघमश्नवद्, दुःशंसं मर्त्यं रिपुम्।
यो अस्मत्रा दुर्हणावाँ उप द्वयुः॥

ऋग्० ८.१८.१४

अन्वय—दुःशंसं रिपुं तं मर्त्यम् इत् अघं सम् अश्नवत्। यः अस्मत्रा दुर्हणावान् द्वयुः (तम् अघम्) उप (अश्नवत्)।

शब्दार्थ—(दुःशंसम्) निन्दक, दुर्भावयुक्त, (रिपुम्) शत्रुरूप, (तम्) उस, (मर्त्यम्) मनुष्य को, (इत्) ही, (अघम्) पाप, (सम् अश्नवत्) प्राप्त हो, व्याप्त हो, (यः) जो, (अस्मत्रा) हमारे बारे में, (दुर्हणावान्) दुरभिसंधि वाला, अहितचिन्तक, (द्वयुः) कपटी, दुतरफा बोलने वाला, (उप अश्नवत्) उसे भी पाप लगे।

हिन्दी अर्थ—जो हमारा निन्दक और शत्रुरूप मनुष्य है, उसको ही पाप लगे। जो हमारे विषय में अशुभचिन्तक और कपटी है, उसे पाप लगे।

Eng. Tr.—May our enemy and reviling person alone bear the results of sins. May the dishonest and intriguing person, plotting evil against us, suffer from sins.

अनुशीलन—इस मन्त्र में मनोविज्ञान के इस तथ्य को स्पष्ट किया गया है कि जो जैसा करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है।

पाप क्या है ? नैतिक मूल्यों के विपरीत कर्म पाप हैं। पाप समाज की व्यवस्था को नष्ट करने वाले तत्त्व हैं। इनसे समाज राष्ट्र और विश्व का अहित होता है। मन्त्र में तीन प्रकार के पापों का उल्लेख है। ये हैं— १. दुःशंस—दूसरे की निन्दा करना, अप्रिय वचन बोलना आदि, २. दुर्हणावान् —छलपूर्वक या घात लगाकर दूसरे को हानि पहुँचाना, धोखे से मारना आदि, ३. द्वयु—दुहरा बोलना, चुगली करना, इधर की बात उधर मिलाना। इस प्रकार के व्यवहार करने वाले को समाज का शत्रु बताया गया है।

शुभ या अशुभ कर्म का फल कर्ता को ही मिलता है, यह शाश्वत नियम है। जो शुभ कर्म करता है, उसे शुभ फल मिलता है। इसके विपरीत जो पाप कर्म करता है, उसे पापकर्मों का फल अवश्य मिलता है। असत्यभाषण, पर-निन्दा, पर-द्रोह, कपट, छल-प्रपंच आदि ऐसे कर्म हैं, जो कर्ता को शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार से हानि पहुँचाते हैं।

टिप्पणी—(१) अश्नवत्—प्राप्त हो। अश् (प्राप्त करना, स्वादि) + लेट् प्र० १। Sub. है। (२) अस्मत्रा—हमारे विषय में। अस्मद् + त्रा। सप्तमी के अर्थ में त्रा। (३) दुर्हणावान्—दुर्हणा (कपट-प्रयोग करना) + मतुप् प्र० १। (४) द्वयुः—कपटी, दोगला, दुहरा बोलने वाला।

९७. पापी को महादुःख

इन्द्रासोमा समघशंसमभ्यघं
तपुर्ययस्तु चरुरग्निवाँ इव।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षुषे,
द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने॥

ऋग्० ७. १०४. २; अथर्व० ८. ४. २; नि० ६.११

अन्वय—हे इन्द्रासोमा ! अघशंसम् अघं सम् अभि (भवतम्), अग्निवान् चरुः इव तपुः ययस्तु । ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षुषे किमीदिने अनवायं द्वेषः धत्तम् ।

शब्दार्थ—(इन्द्रासोमा) हे इन्द्र और सोम देवो ! (अघशंसम्) पाप करने वाले, (अघम्) पापी को, (सम्) अच्छी तरह, (अभि भवतम्) तिरस्कृत करो, हरावो । (अग्निवान्) अग्नि पर चढ़ाए हुए, (चरुः इव) वर्तन या हांडी के तुल्य, (तपुः) संतापकारी, तापक व्यक्ति, (ययस्तु) तपाया जाए । (ब्रह्मद्विषे) ब्रह्मद्वेषी अर्थात् नास्तिक, (क्रव्यादे) मांसाहारी, (घोरचक्षुषे) क्रूर दृष्टि वाले, (किमीदिने) सर्वाहारी, सर्वभक्षक पापी पर, (अनवायम्) निरन्तर, सदा, (द्वेषः) द्वेष, (धत्तम्) रखो ।

हिन्दी अर्थ—हे इन्द्र और सोम देवो ! तुम दोनों पाप-कर्म में लिप्त पापी को अच्छी तरह तिरस्कृत करो । आग पर रखी हुई हांडी की तरह दुःख देने वाला व्यक्ति तपाया जाए । नास्तिक, मांसाहारी, क्रूर दृष्टि और सर्वभक्षक व्यक्ति पर तुम दोनों निरन्तर द्वेष का भाव रखो ।

Eng. Tr—O Indra and Soma ! May you despise severely a wretched person, engaged in evil deeds. Torture one, who inflicts injuries on the others, like a pot placed on the fire. May both of you always hate him, who is an atheist, evil-eyed and eating indiscriminately.

अनुशीलन—इस मंत्र में पापियों के कुछ प्रकारों का उल्लेख है और इन्द्र तथा सोम देवों से प्रार्थना की गई है कि इन पापियों को तपाकर नष्ट किया जाए। ये पापी हैं :—१. अघशंस—दूसरे का बुरा सोचने वाला, २. ब्रह्मद्विष्—नास्तिक एवं ज्ञान का द्वेषी, ३. क्रव्याद्—मांसाहारी, ४. घोरचक्षुष्—बुरी दृष्टि से देखने वाला, ५. किमीदिन्—सर्वभक्षी या भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार न करने वाला ।

मंत्र का कथन है कि पापी को उसी प्रकार तपाया जाए जैसे आग पर रखी हुई हांडी। समाज और राष्ट्र की सुरक्षा के लिए पापी को कठिन से कठिन दंड देना आवश्यक है। पापियों में दूसरे प्रकार के व्यक्ति नास्तिक लोग हैं। ये नास्तिकता का प्रचार करते हैं और ज्ञान से घृणा करते हैं, अतः दंडनीय हैं। मांसाहारी हिंसा में विश्वास रखता है और पशु-पक्षियों का वध करता है, अतः हिंसा के प्रचार के कारण समाज का शत्रु है और दंडनीय है। क्रूर दृष्टि वाला व्यक्ति सदा दूसरे का अनिष्ट सोचता है और दुर्भावना से ग्रस्त रहता है, अतः समाज का शत्रु है तथा दंडनीय है। सर्वभक्षी व्यक्ति भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार न करने के कारण आचारहीन होता है, दुर्व्यसनों में ग्रस्त रहता है, सात्त्विक भावों से हीन होता है, अतः समाज के लिए हानिकारक है और दंडनीय है।

टिप्पणी—(१) **अभि**—अभिभवतम्, तिरस्कृत करो। (२) **तपुः**—दुःख देने वाला व्यक्ति। (३) **ययस्तु**—तपाया जाए। यस् (तपाना, जुहो०)+लोट् प्र० १। (४) **चरुः**—हांडी या हांडी में पकाया जाने वाला अन्न। (५) **ब्रह्मद्विषे**—ब्रह्म—ईश्वर, ब्रह्म का, द्विष्—द्वेषी, अर्थात् नास्तिक। च० १। (६) **धत्तम्**—रखो। धा (रखना, जुहो०)+लोट् म० २। (७) **किमीदिने**—सब कुछ खाने वाले को। किम्+ईदिन्+च० १। अद् (खाना) से ईदिन् है।

९८. दुर्विचार का फल पापी को

अजैष्माद्यासनाम चाऽभूमानागसो वयम्।
जाग्रत्स्वप्नः संकल्पः, पापो यं द्विष्मस्तं स ऋच्छतु,
यो नो द्वेष्टि तमृच्छतु ॥

ऋग्० १०. १६४.५

अन्वय—अद्य अजैष्म, असनाम च, वयम् अनागसः अभूम। जाग्रत्स्वप्नः पापः संकल्पः यं द्विष्मः तं स ऋच्छतु, यः नः द्वेष्टि तम् ऋच्छतु।

शब्दार्थ—(अद्य) आज, (अजैष्म) हम विजयी हुए। (असनाम च) हमने धन आदि प्राप्त किया। (वयम्) हम, (अनागसः) निष्पाप, (अभूम) हो गए। (जाग्रत्स्वप्नः) जागते और स्वप्न अवस्थाओं में, (पापः संकल्पः) जो पाप के विचार उठते हैं, (यं द्विष्मः) जिससे हम द्वेष करते हैं, (तं स ऋच्छतु) उसको वह पाप प्राप्त हो। (यः) जो, (नः) हमसे, (द्वेष्टि) द्वेष करता है, (तम् ऋच्छतु) उसको वह पाप लगे।

हिन्दी अर्थ—हमने आज विजय प्राप्त की। हमने धनादि प्राप्त किया और हम निष्पाप हो गए हैं। जागते और सोते समय जो पाप के विचार उठे हैं, वे उसको प्राप्त हों, जिससे हम द्वेष करते हैं, या जो हमसे द्वेष करता है।

Eng. Tr.—Today we are victorious; we obtained our desired objects and we are now sinless. What ever evil thought entered in our mind, either in awakened state or in sleep, let it go to him, whom we hate or who hates us.

अनुशीलन—इस मन्त्र में दुर्विचार और शुभ विचारों का अन्तर बताया गया है। दुर्विचार पाप हैं और शुभ विचार पुण्य। दुर्विचारों का परित्याग करके शुभ विचारों को अपनाने से मनुष्य निष्पाप होता है।

मन्त्र में स्पष्ट किया है कि दुर्विचारों को छोड़कर निष्पाप होने से विजयश्री प्राप्त होती है और अभीष्ट पदार्थों की उपलब्धि होती है। जब मनुष्य के हृदय से दुर्विचार या पाप नष्ट हो जाते हैं तो वह सत्त्वप्रधान या सात्त्विक हो जाता है। सात्त्विकता सभी प्रकार के सद्गुणों को देने वाली है। इससे ही मनुष्य जीवन में विजय प्राप्त करता है और अपने मनोरथों को सिद्ध करता है।

दूसरी ओर अशुभ विचार हैं। ये पाप हैं। इन पापों में द्वेष भी प्रमुख है। समाज पापी से घृणा करता है। जो समाज से द्वेष करता है या समाज जिसको घृणा की दृष्टि से देखता है, वह पापी है। ऐसे व्यक्ति को पाप का फल भोगना पड़ता है।

टिप्पणी—(१) अजैष्म—विजयी हुए। जि (जीतना, भ्वादि)+लुङ् उ० ३। (२) असनाम—पाया। सन् (पाना, तनादि)+लुङ् उ० ३। अ Aorist है। (३) अभूम—हुए। भू (होना, भ्वादि)+लुङ् उ० ३। (४) द्विष्मः—द्वेष करते हैं। द्विष् (द्वेष करना, अदादि)+लट् उ० ३। (५) ऋच्छतु—जावे, प्राप्त हो। ऋ (ऋच्छ्, जाना, तुदादि)+लोट् प्र० १। (६) द्वेष्टि—द्वेष करता है। द्विष् (द्वेष करना, अदादि)+लट् प्र० १।

९९. काम के दो रूप : शुभ-अशुभ

यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्रा
याभिः सत्यं भवति यद् वृणीषे।
ताभिष्ट्वमस्माँ अभिसंविशस्व-
अन्यत्र पापीरप वेशया धियः॥

अथर्व० ९.२.२५

अन्वय—हे काम ! याः ते शिवाः भद्राः तन्वः, याभिः यत् सत्यं भवति, (तद्) वृणीषे। ताभिः त्वम् अस्मान् अभिसंविशस्व, पापीः धियः अन्यत्र अप वेशय।

शब्दार्थ—(हे काम !) हे संकल्प !, हे विचारशक्ति !, (याः) जो, (ते) तेरे, (शिवाः) शुभ, (भद्राः) कल्याणकारी, (तन्वः) शरीर हैं। (याभिः) जिनसे, (यत्) जो, (सत्यं भवति) सच्चा होता है, उसको, (वृणीषे) चुनती हो, स्वीकार करती हो। (ताभिः) उनसे, (त्वम्) तू, (अस्मान्) हमारे अन्दर, (अभिसंविशस्व) प्रविष्ट हो, (पापीः धियः) दुष्ट बुद्धियों को, (अन्यत्र) दूसरे स्थान पर, (अप वेशय) रखो।

हिन्दी अर्थ—हे विचारशक्ति ! (हे कामदेव !), तुम्हारे जो शुभ और कल्याणकारी रूप हैं, उनसे तुम उसको वरण करती हो, जो सच्चा होता है। तुम उन रूपों से हमारे अन्दर प्रविष्ट हो। तुम अपने अशुभ रूप अर्थात् दुष्ट बुद्धियों को अन्यत्र रखो।

Eng. Tr.—O Thought-power ! which is your auspicious and benevolent form, by that you choose a person, who is righteous. With those noble forms be seated in us. Keep your evil intentions else-where.

अनुशीलन—इस मंत्र में काम के दो रूपों का वर्णन है। ये हैं—१. शिव रूप, शुभ विचार या शुभ संकल्प, २. अशिव रूप, काम-भावना, विषय-लोलुपता। इनमें से शिवरूप को ग्राह्य बताया गया है और अशिव रूप को अग्राह्य।

काम का शिव रूप उत्साह, इच्छाशक्ति, विचारशक्ति और मनोबल के रूप में है। यह शिवरूप काम किसको प्राप्त होता है ? इसका उत्तर दिया गया है कि जो सच्चा होता है, सत्यवादी और पवित्रात्मा है, उसे शिव संकल्परूपी काम प्राप्त होता है। यह काम पवित्रात्मा में मनोबल, इच्छाशक्ति और शुभ विचार देता है। यह मानसिक और आत्मिक उन्नति का साधक होता है। इससे जीवन विकसित और उन्नत होता है।

दूसरी ओर अशुभ काम वासना, इन्द्रिय-लोलुपता, भोगेच्छा और कामुकता देता है। यह अशुभ काम बुद्धि को भ्रष्ट करता है और विषय-वासनाओं में रमता है। इस अशुभ काम को मन से हटाने का निर्देश दिया गया है।

टिप्पणी—(१) वृणीषे—तुम चुनती हो। वृ (चुनना, क्र्यादि)+लट् म० १। (२) अभिसंविशस्व—प्रवेश करो। अभि+सम्+विश् (प्रवेश करना, तुदादि)+लोट म० १। (३) अप वेशय—रखो। अप+विश (प्रविष्ट होना, रखना, तुदादि)+णिच्+लोट् म० १। छान्दस दीर्घ।

१००. वरदा वेदमाता

स्तुता मया वरदा वेदमाता
प्र चोदयन्तां पावमानो द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्ति
द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् ।
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥

अथर्व० १९.७१.१

अन्वय—(हे देवाः,) मया द्विजानां पावमानी वरदा वेदमाता स्तुता । प्र चोदयन्ताम् । आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्ति द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्त्वा ब्रह्मलोकं व्रजत ।

शब्दार्थ—(हे देवाः) हे देवो, (मया) मैंने, (द्विजानाम्) द्विजों को, ब्राह्मणादि को, (पावमानी) पवित्र करने वाली, (वरदा) वर देने वाली, अभीष्ट-साधक, (वेदमाता) वेदमाता की, (स्तुता) स्तुति की। (प्र चोदयन्ताम्) आप सब हमें सत्कर्म में प्रेरित करें। (आयुः प्राणं प्रजाम्) आयु, जीवन, सुसन्तान, (पशुं कीर्ति द्रविणम्) पशुधन, यश, धन, (ब्रह्मवर्चसम्) ब्रह्मतेज, (मह्यम्) मुझे, (दत्त्वा) देकर, (ब्रह्मलोकम्) ब्रह्मलोक को, (व्रजत) आप सब जाइए ।

हिन्दी अर्थ—हे देवो ! मैंने द्विजों को पवित्र करने वाली, वरदा (अभीष्ट-साधक) वेदमाता की स्तुति की है । आप सब मुझे प्रेरणा दें । दीर्घ आयु, जीवन-शक्ति, सुसन्तान, पशुधन, यश, वैभव और ब्रह्मतेज मुझे देकर ब्रह्मलोक को जाइए ।

Eng. Tr—O Gods ! I have worshipped the boongiver mother-like *knowledge* (Vedamata), who makes pure and pious

all consecrated beings. Inspire me. Give me long and energetic life, good family, animals, fame, riches and divine glory, before departing to the heaven.

अनुशीलन—वेदों की महिमा अपार है। वेद ज्ञान के स्रोत हैं। विश्व को सर्वप्रथम ज्ञान देने का श्रेय वेदों को है। वेद मानव-मात्र के लिए प्रकाश-स्तम्भ हैं। जहाँ वेदों की ज्योति है, वहाँ प्रकाश है, उन्नति है, सुख है, शान्ति है और सतत विकास है। इस मन्त्र में वेद को माता कहा गया है। जिस प्रकार माता सन्तान की रक्षा करती है, उसी प्रकार वेद सारे संसार की रक्षा के साधन हैं। माता अपने दूध से बालक को पुष्ट करती है, उसी प्रकार वेद ज्ञानरूपी दूध पिलाकर संसार में सुख की वृद्धि करते हैं। वेदमाता की सेवा से ही आर्यों का वंश अक्षय रहा है। वेदमाता वरदा है।

वेदों का स्वाध्याय प्रत्येक व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व की उन्नति का साधन है, विश्व-बन्धुत्व का प्रेरक है और विश्व-धर्म का संस्थापक है।

टिप्पणी—(१) **स्तुता**—स्तुति की। स्तु (स्तुति करना, अदादि) + क्त (त) + टाप् (आ)। (२) **वरदा**—वर देने वाली, अभीष्ट को पूरा करने वाली। (३) **वेदमाता**—वेद माता के तुल्य रक्षक हैं, पूज्य हैं। (४) **प्र चोदयन्ताम्**—प्रेरित करें, प्रेरणा दें। प्र + चुद् (प्रेरणा देना, भ्वादि) + णिच् + लोट् + प्र० ३। प्र० पु० बहुवचन है, अतः देवाः का अध्याहार है। प्रचोदयन्ती पाठ मानने पर अर्थ होगा—प्रेरणा देने वाली वेदमाता। (५) **व्रजत**—जाओ। हे देवो, ब्रह्मलोक को जाओ। तुम वेद-परायणकर्ता का उद्धार करने वाले हो, उसे आयु आदि देकर अपने स्थान ब्रह्मलोक को जाओ। व्रज् (जाना, भ्वादि) + लोट् म० ३।

॥ इति शम् ॥

सूक्तियाँ

१. वेदोऽखिलो धर्ममूलम् । मनु० २.६
(वेद धर्म के मूल हैं ।)

२. सर्वज्ञानमयो हि सः । मनु० २.७
(वेदों में सारा ज्ञान और विज्ञान है ।)

३. धर्मं जिज्ञासमानां प्रमाणं परमं श्रुतिः । मनु० २.१३
(धर्म के जिज्ञासुओं के लिए वेद ही परम प्रमाण हैं ।)

४. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है । वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।
—महर्षि दयानन्द, आर्यसमाज का तृतीय नियम

परिशिष्ट

सुभाषित-संग्रह (वैदिक मनोविज्ञान)

सूचना : कोष्ठ में मंत्र-संख्या दी गई है। शब्दार्थ, विवरण आदि के लिए संबद्ध मंत्र देखिए।

१. अथो भगस्य नो धेहि। (५५)
[हमें ऐश्वर्य दो।]

२. अध्यक्षो वाजी मम काम उग्रः। (५७)
[प्रतापी एवं बलवान् इच्छाशक्ति मेरा संचालक है।]

३. अन्यत्र पापीरप वेशया धियः। (९९)
[दुष्ट विचारों को दूर रखो।]

४. अभि द्यां महिना भुवम्। (४०)
[मैंने मनोबल से द्युलोक को पराजित किया है।]

५. अभूमानागसो वयम्। (९८)
[हम निष्पाप हो गए हैं।]

६. अवधीत् कामो मम ये सपत्नाः। (४१)
[मेरे मनोबल ने शत्रुओं को नष्ट कर दिया है।]

७. असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता। (७३)
[असत्यवादी का नाश हो।]

८. अस्ति नु तस्मादोजीयो यद् विहव्येनेजिरे। (८६)
[संकल्पशुद्धि सर्वोत्तम यज्ञ है।]

९. अहं गृभ्णाणि मनसा मनांसि। (२७)
[मैं मन से तुम्हारे मन को वश में करता हूँ।]

१०. अहमिन्द्रो न परा जिग्ये । (३९)
[मैं इन्द्र हूँ, कभी पराजित नहीं होता ।]

११. आकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु । (३१)
[मेरे मन के संकल्प सफल हों ।]

१२. आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे । (५४)
[इच्छाशक्तिरूपी देवी को सबसे आगे रखता हूँ ।]

१३. आकूतिर्या वो मनसि प्रविष्टा । (५०)
[मन में संकल्पशक्ति रहती है ।]

१४. आकूत्या न उपा गहि । (५५)
[संकल्पशक्ति के साथ हमारे पास आवो ।]

१५. आ न एतु मनः पुनः, क्रत्वे दक्षाय जीवसे । (३७)
[पुरुषार्थ, दक्षता और जीवनशक्ति के लिए मनोबल है ।]

१६. आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः । (६७)
[शुभ विचार सभी ओर से हमारे पास आवें ।]

१७. इदं यत् परमेष्ठिनं मनः । (२६)
[मन ईश्वरीय शक्ति-सम्पन्न है ।]

१८. इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि । (२७)
[पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और मन ज्ञान के साधन हैं ।]

१९. ईर्ष्याम् उद्नाग्निमिव शमय । (९४)
[ईर्ष्यारूपी अग्नि को शान्तिरूपी जल से शान्त करो ।]

२०. ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः । (१५)
[प्राकृतिक नियमों को मन से जानते हैं ।]

२१. एनो मा नि गां कतराच्चनाहम् । (३१)
[मैं किसी प्रकार का कोई पाप न करूँ ।]

२२. एवा दाधार ते मनो जीवातवे । (३४)
[जीवनी शक्ति के लिए तेरे मन को रोकता हूँ ।]

२३. कामं स्तुत्वोदहं भिदेयम् । (८७)
[मैं इच्छाशक्ति का आश्रय लेकर उन्नत होता हूँ ।]

२४. कामज्येष्ठा इह मादयध्वम् । (६२)
[संकल्पशक्ति-प्रधान देवगण आनन्दित हों ।]

२५. कामस्तदग्रे समवर्तत । (८४)
[सबसे पहले संकल्पशक्ति उत्पन्न हुई ।]

२६. कामेन मा काम आगन् । (७१)
[संकल्पशक्ति से मुझमें इच्छाशक्ति आई ।]

२७. कामेनाजनयन् स्वः । (७०)
[इच्छाशक्ति ने आनन्द को जन्म दिया ।]

२८. कामो अन्वेत्वस्मान् । (६३)
[इच्छाशक्ति हमें प्राप्त हो ।]

२९. कामो जज्ञे प्रथमः । (८२)
[संकल्पशक्ति सबसे पहले उत्पन्न हुई ।]

३०. किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः । (४६)
[नास्तिक मेरी क्या निन्दा कर सकते हैं ? कुछ नहीं ।]

३१. चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः, पृष्टीरपि शृणाञ्जन । (८०)
[आँख से टोना करने वाले की पसली तोड़ दो ।]

३२. चिकित्विन्मनसं धियं, प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् । [२५]
[बुद्धि मन को चेतना देती है और ऋत से पुष्ट होती है ।]

३३. ज्यायान् निमिषतोऽसि तिष्ठतः । (५९)
[इच्छाशक्ति चर और अचर से श्रेष्ठ है ।]

३४. ज्योतिषां ज्योतिरेकम् । (२)
[मन प्रकाशों का प्रकाशक है ।]

३५. तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु । (२ से ७)
[मेरा मन शुभ विचारों वाला हो ।]

३६. तृतीये नाके सधमादं मदेम। (२९)
[शुद्ध मन से मुक्तिधाम में आनन्दित रहें।]

३७. त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितः। (४२)
[मनोबल अपने सामर्थ्य से प्रतिष्ठित है।]

३८. त्वं धियं मनोयुजं सृज। (४८)
[बुद्धि का मन से समन्वय करें।]

३९. त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः। (४२)
[मनोबल अदम्य है। वह युद्धों में विजयी होता है।]

४०. देवं मनः कुतो अधि प्रजातम्। (९)
[मन दिव्य है। कहाँ से उत्पन्न हुआ है ?]

४१. धियो यो नः प्रचोदयात्। (१)
[परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग पर प्रेरित करे।]

४२. न पर्वतासो यदहं मनस्ये। (३८)
[मेरे निश्चय को पर्वत भी नहीं टाल सकते।]

४३. न मृत्यवेऽव तस्थे कदाचन। (३९)
[मैं कभी भी मृत्यु के वश में नहीं हूँ।]

४४. न वै वातश्चन काममाप्नोति। (६०)
[वायु भी इच्छाशक्ति को नहीं पा सकता है।]

४५. पतङ्गो वाचं मनसा बिभर्ति। (१८)
[आत्मा मन के द्वारा वाक्तत्त्व को धारण करता है।]

४६. परोऽपेहि मनस्पाप। (३२)
[हृदय से पाप के विचार दूर हों।]

४७. पर्यंचामि हृदा मतिम्। (३३)
[मैं हृदय से बुद्धि को परिष्कृत करता हूँ।]

४८. पाकत्रा स्थन देवाः। (७७)
[देवता पवित्र हृदय में रहते हैं।]

४९. बहुधा जीवतो मनः । (२३)
[मनुष्य का मन अनेक विचारों वाला है ।]
५०. ब्रह्म वर्म विततम् अनतिव्याध्यं कृतम् । (५८)
[इच्छाशक्ति ज्ञानरूपी कवच है और अभेद्य है ।]
५१. भगः सं वो अजीगमत् । (५१)
[ऐश्वर्य का देवता तुम्हें संगठित करे ।]
५२. भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः । (६६)
[हे देवा ! हम कान से अच्छी बातें सुनें ।]
५३. भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये । (३०)
[पापों के नाश के लिए मन पवित्र करो ।]
५४. भर्गो देवस्य धीमहि । (१)
[हम परमात्मा के तेज को धारण करें ।]
५५. मदेम तत्र परमे व्योमन् । (८)
[हम परम पद पाकर आनन्दित हों ।]
५६. मनश्चिन्मे हृद आ प्रत्यवोचत् । (१७)
[मन ने हृदय से कहा । मन हृदय का निर्देशक है ।]
५७. मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय । (२०)
[मन की इच्छा और संकल्पों को तथा वाणी की सत्यता पाऊँ ।]
५८. मनसाऽमर्त्येन । (८)
[मन अमर है ।]
५९. मनसा सं कल्पयति । (१९)
[मन से संकल्प या विचार करता है ।]
६०. मनसा सं शिवेन । (२८)
[पवित्र मन से युक्त हों ।]
६१. मनसे चेतसे धिये । (२१)
[मन के कार्य हैं—चिन्तन, चेतना और अवधान ।]

६२. मनो अस्या अन आसीत् । (३६)
[मन एक रथ है ।]
६३. मनो दक्षमुत क्रतुम् । (२२)
[मन में दक्षता और कर्मठता हो ।]
६४. मनो न्वाह्वामहे नाराशंसेन स्तोमेन । (४३)
[जनहितकारी स्तुतियों से मन का आह्वान करते हैं ।]
६५. मनो मेधामग्निं प्रयुजं स्वाहा । (८५)
[मन मेधारूपी अग्नि है और प्रेरक है ।]
६६. मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रः । (४१)
[चारों दिशाएँ मेरे आगे झुकें ।]
६७. मा ते मनो विष्वद्र्यग् वि चारीत् । (१४)
[तेरा मन इधर-उधर न जावे ।]
६८. मा युष्महि मनसा दैव्येन । (७६)
[हम दिव्य मन से वियुक्त न हों ।]
६९. म्रोको मनोहा खनो निर्दाहः । (६५)
[मनोबल के नाशक हैं—घातक, नाशक और दाहक विचार ।]
७०. यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवम् । (२)
[दिव्य मन जागृत अवस्था में दूर तक जाता है ।]
७१. यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । (४)
[मन मनुष्य के अन्दर विद्यमान अमर ज्योति है ।]
७२. यत् ते काम शर्म त्रिवरूथमुद्भु । (५८)
[इच्छाशक्ति का संरक्षण उत्कृष्ट एवं तीन प्रकार से रक्षक है ।]
७३. यत्ते दिवं यत् पृथिवीं मनो जगाम दूरकम् । (१२)
[मन द्यावापृथिवी में दूर तक जाता है ।]
७४. यत्ते भूतं च भव्यं च मनो जगाम दूरकम् । (१६)
[मन तीनों कालों में दूर तक जाता है ।]

७५. यत्ते विश्वमिदं जगत्, मनो जगाम दूरकम् । (१३)
[मन सारे संसार में दूर-दूर तक जाता है ।]

७६. यत् प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च । (४)
[मन के कार्य हैं—जानना, स्मरण और धारण ।]

७७. यथा मनो मनस्केतैः परापतत्याशुमत् । (११)
[मन विचारों के साथ बहुत तीव्र गति से उड़ता है ।]

७८. यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानाम् । [३]
[मन मानव शरीर में अनुपम और पूज्य है ।]

७९. यद् वो मनः परागतं....तद् व आ वर्तयामसि । (७२)
[तुम्हारे दूर गए मन को मैं लौटाकर लाता हूँ ।]

८०. यमैच्छाम मनसा सोऽयमागात् । [४४]
[हमने मन से जिसको चाहा, वह हमें मिल गया ।]

८१. यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते । (४)
[मन के बिना कोई काम नहीं किया जा सकता है ।]

८२. यस्मिन् ऋचः साम यजूंषि । (६)
[मन में ही ऋग् , साम और यजुर्वेद प्रतिष्ठित हैं ।]

८३. यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानाम् । (६)
[मन में ही संसार का चित्त ओत-प्रोत है ।]

८४. युञ्जते मन उत युञ्जते धियः । (४७)
[विद्वान् परमात्मा में मन और बुद्धि लगाते हैं ।]

८५. येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतम् । (५)
[मन में ही वर्तमान,भूत और भविष्य संलग्न हैं ।]

८६. येनैव ससृजे घोरं, तेनैव शान्तिरस्तु नः । (२६)
[मन ही दुःखद की रचना करता है, वही शान्ति दे ।]

८७. वशा माता स्वधे तव । (९०)
[चेतना की माता वाक्तत्त्व है ।]

८८. वातो वा मनो वा''''ते अस्मिन् जवमादधुः । (१०)
[वायु और मन ने मनुष्य को वेग दिया है ।]

८९. सं जानामहै मनसा । (७६)
[हम मनसे सबसे एकता स्थापित करें ।]

९०. संज्ञपनं वो मनसः । (४९)
[तुम्हारे मन की एकता हो ।]

९१. संज्ञानं नः स्वेभिः, संज्ञानमरणेभिः । (५३)
[हमारा अपने और परायों से ऐकमत्य हो ।]

९२. सं मनांसि समु व्रता । (५१)
[तुम्हारे मन और कर्मों में समन्वय हो ।]

९३. सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि । (२८)
[हम तेज, दुग्धादि और स्वस्थ शरीर से युक्त हों ।]

९४. सं वो मनांसि सं व्रता, समाकूतीर्नमामसि । (५२)
[तुम्हारे मन, कर्म और विचार एकरूप हों ।]

९५. समित् तमघमश्नवद् , दुःशंसं मर्त्यं रिपुम् । (९६)
[निन्दक को ही पाप का फल मिले ।]

९६. सा ते काम दुहिता धेनुरुच्यते । (५६)
[संकल्प की पुत्री वाणी कामधेनु है ।]

९७. स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ताम् । (१००)
[मैंने वरदा वेदमाता की स्तुति की है । देव मुझे प्रेरणा दें ।]

९८. हनो वृत्रं जया स्वः । (७९)
[दुर्विचारों को नष्ट करो और सुख पावो ।]

९९. हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठम् । (७)
[मन हृदय में रहता है । वह फुर्तीला और तीव्रगामी है ।]

१००. हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चितः । (७८)
[विद्वान् हृदय और मन को समन्वित करके देखते हैं ।]

●

डा० कपिलदेव द्विवेदी

कुलपति, गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (हरिद्वार) एवं

निदेशक, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर (वाराणसी)।

जन्म—गहमर (गाजीपुर) उ० प्र०, तिथि—१६-१२-१९१९ ई, पिता—श्री बलरामदास जी, शिक्षा—गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार), लाहौर, इलाहाबाद। उपाधियाँ—एम ए० (संस्कृत, हिन्दी), डी०फिल् (इलाहाबाद), व्याकरणाचार्य (वाराणसी)। जर्मन, फ्रेंच, रूसी, चीनी भाषाओं मे विशेष योग्यता। यू०पी०ई० एस० (प्रथम श्रेणी)। अवकाश-प्राप्त प्राचार्य, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय उ.प्र.। प्रकाशन—५० से अधिक ग्रन्थ। उ०प्र०शासन द्वारा पुरस्कृत ग्रन्थ—१. अर्थविज्ञान और व्याकरण-दर्शन (१९५२), २. संस्कृत-व्याकरण (१९७२), ३. संस्कृत-निबन्ध-शतकम् (१९७७), ४. राष्ट्रगीतांजलिः (१९८१), ५. भक्तिकुसुमांजलिः (१९८९)। अन्य विशेष उल्लेखनय— १. भाषाविज्ञान एवं भाषा शास्त्र, २. प्रौढ रचनानुवाद कौमुदी, ३. रचनानुवाद-कौमुदी, ४. प्रा० रचनानुवाद कौमुदी, ५. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, ६. वेदामृतम (१२ भाग) सुखी जीवन, सुखी गृहस्थ, सुखी परिवार, सुखी समाज, आचार-शिक्षा, नीति-शिक्षा, वेदों में नारी, वैदिक मनोविज्ञान, यजुर्वेद सुभाषितावली, सामवेद सुभाषितावली, अथर्ववेद सुभाषितावली, ऋग्वेद सुभाषितावली।

'वेदों की महिमा अपार है। वेद ज्ञान के स्रोत हैं। विश्व को सर्वप्रथम ज्ञान देने का श्रेय वेदों को है। वेद मानव-मात्र के लिए प्रकाश-स्तम्भ हैं। जहाँ वेदों की ज्योति है, वहाँ प्रकाश है, उन्नति है, सुख है, शान्ति और सतत विकास है।...वेदों का स्वाध्याय प्रत्येक व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व की उन्नति का साधन है, विश्व-बन्धुत्व का प्रेरक है और विश्व-धर्म का सस्थापक है।'

—डा० कपिलदेव द्विवेदी (वेदामृतम्)